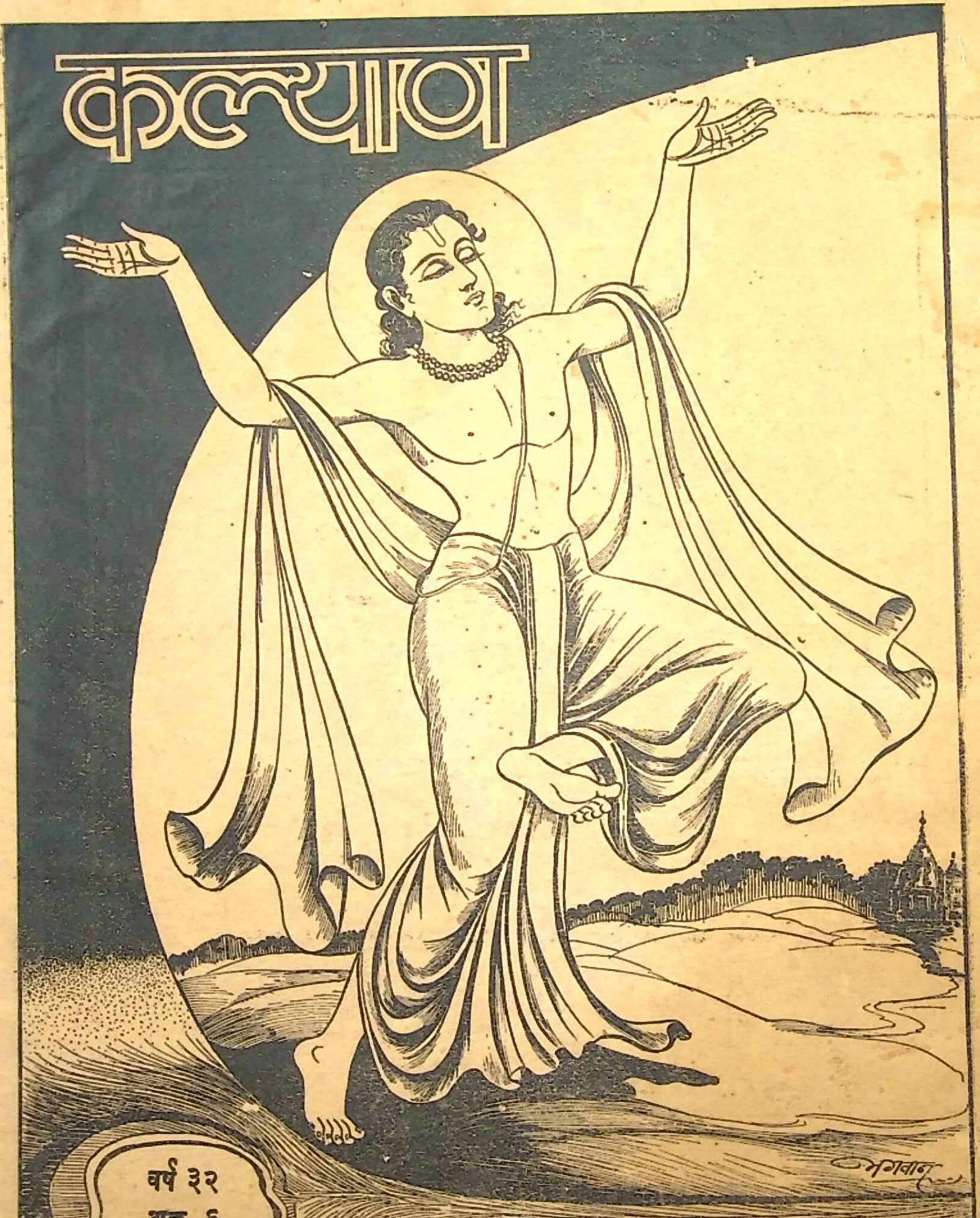

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतित-पावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०१५, जून १९५८

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–सूर्य-स्तवन [कविता] ···	९६५
२–कल्याण ('शिव') ···	९६६
३–ईश्वरकी प्राप्ति सुलभ है या दुर्लभ ? (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी महाराज) ···	९६७
४–परमार्थ-पत्रावली (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ··· ···	९७१
५–कामना [कविता] ··· (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) ···	९८०
६–वैष्णव-सदाचार ··· ···	९८१
७–भक्ति बिनु तन-मन मैलो [कविता] (श्रीव्यासजी) ··· ···	९८८
८–महर्षि वशिष्ठकी गोदमें श्रीरा (पं० श्रीऋषिकेशजी त्रिवेदी) ···	९८९
९–रामनाम (महात्मा गाँधी) ···	९९२
१०–विवेकका आश्रय (साधुवेषमें एक पथिक) ··· ···	९९३
११–चोखी सीख ··· ···	९९४
१२–समाजकी मौन-स्वीकृतिसे अपराध होता है (श्रीमनोहर मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न)	९९५
१३–प्रार्थनामय जीवन [दिव्यताका प्रारम्भ] (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) ···	९९६
१४–मेरी चाह ··· ···	९९८
१५–मानवताकी पुकार [कहानी] (श्री'चक्र') ··· ···	९९९
१६–प्रश्न [कविता] ···	१००१
१७–गीतामें ज्ञानयोग (पं० श्रीगिरिजादत्तजी शुक्ल 'गिरीश') ··	१००२
१८–समाज-कल्याणका मूलमन्त्र [सहयोगकी भावनाका विकास] (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ··· ···	१००३
१९–तुम्हीं मेरे सर्वस्व [कविता] ···	१००६
२०–मूर्तिमान् परोपकार [कहानी] (स्वामीजी श्रीपारसनाथजी सरस्वती)	१००७
२१–जीवनकी मूलभित्ति (श्रीलावेल फिल्मोर) ··· ···	१०१०
२२–एक प्राण दो शरीर [कहानी] (श्रीआचार्य सर्वे) ···	१०११
२३–तूँवर भगवान (प० श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न) ··· ···	१०१३
२४–शीघ्रातिशीघ्र परमात्माकी प्राप्ति होनेके साधन (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१०१५
२५–अखण्ड नाम-स्मरणसे साक्षात् दर्शन (संकलित) ··· ···	१०२०
२६–पढ़ो, समझो और करो ···	१०२१

चित्र-सूची

तिरंगा

१–भगवान् भास्कर ··· ··· ··· ··· ९६५

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ।≡) विदेशमें ॥–) (१० पैंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भगवान् भास्कर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ये मुक्तावपि निःस्पृहाः प्रतिपदप्रोन्मीलदानन्ददां यामास्थाय समस्तमस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्वे वशे ।
तान् भक्तानपि तां च भक्तिमपि तं भक्तिप्रियं श्रीहरिं वन्दे संततमर्थयेऽनुदिवसं नित्यं शरण्यं भजे ॥

वर्ष ३२ } गोरखपुर, सौर आषाढ़ २०१५, जून १९५८ { संख्या ६ पूर्ण संख्या ३७९

सूर्य-स्तवन

दीन दयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥ १ ॥
हिम तम करि केहरि करमाली । दहन दोष दुख दुरित रुजाली ॥ २ ॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी । तेज प्रताप रूप रस रासी ॥ ३ ॥
सारथि पंगु दिव्य रथगामी । हरि संकर बिधि मूरति स्वामी ॥ ४ ॥
बेद पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम भगति बर मागै ॥ ५ ॥

१—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कल्याण

याद रक्खो—जब तुम किसीके सम्बन्धमें यह निश्चय कर लेते हो कि वह तुम्हारा विरोधी है, तब उसके मनमें तुम्हारे प्रति जरा भी विरोध न होनेपर भी तुम्हारा असत् निश्चय तुम्हारे व्यवहारमें उसके प्रति विरोधकी और उसके अनिष्टकी भावना उत्पन्न कर देगा, जो उसको प्रत्यक्ष दिखायी देगी और जब वह तुम्हारे व्यवहारमें अपने प्रति वैर-विरोध देखेगा, तब उसके मनमें भी तुम्हारे प्रति सहज ही वैर-विरोधका भाव उत्पन्न हो जायगा और तब तुम्हें अपने प्रति होनेवाले उसके व्यवहारमें स्पष्ट ही वैर-विरोध दिखायी देगा।

याद रक्खो—जब तुम्हें उसके व्यवहारमें वैर-विरोध दिखायी देगा, तब तुम्हारा यह निश्चय और भी बद्धमूल हो जायगा तथा तुम यह निश्चितरूपसे मान लोगे कि वस्तुतः यह तुम्हारा वैरी ही है और तुमने उसके साथ जो असत्-व्यवहार किया था, वह उचित ही था। तथा इस प्रकार उसे वैरी मानकर फिर तुम सहज ही उसे हानि पहुँचानेके कार्य करने लगोगे और बदलेमें वह भी वैसे ही करेगा। वैरकी जड़ जम जायगी और पुष्पित-फलित होकर विष-वृक्षका विस्तार करने लगेगी।

याद रक्खो—न तो वह पहले तुम्हारा वैरी था, न उसके व्यवहारमें ही तुम्हारे प्रति कोई वैर-विरोध था। तुम्हींने अपनी मिथ्या धारणासे उसे अपना वैरी बना लिया और इस प्रकार तुम्हीं अपना तथा उसका अहित करनेमें स्वयं कारण बने।

याद रक्खो—यदि तुम्हारा कोई वैरी है भी तो, वह तुम्हारे वैसे प्रारब्धके बिना तुम्हारा जरा भी अनिष्ट नहीं कर सकता, बल्कि तुम्हारे प्रति अनिष्ट भावना करके वह अपना ही अनिष्ट-साधन कर रहा है। इसलिये तुम्हें चाहिये कि तुम उसके प्रति विरोधी भाव न रखकर उसका कल्याण चाहो। जब तुम उसका अनिष्ट न चाहकर हित चाहोगे तो तुम्हारे व्यवहार-बर्तावमें सहज ही उसके प्रति सद्भाव तथा उसके हितका प्रयास होगा। इसके परिणामस्वरूप उसे अपनी भूल दिखायी देगी और वह विरोधीभावको छोड़कर तुम्हारा मित्र बन जायगा एवं एक बड़े अहितसे अपनेको बचा सकेगा। इसमें तुम्हारा तो हित होगा ही।

याद रक्खो—तुम अपने भ्रान्त निश्चय तथा असद्भावसे दूसरोंको अपना वैरी बना लेते हो और सद्भावसे वैरीको भी मित्र बना लेते हो। जो सबके प्रति मैत्री-भावना करता है, वह स्वयं तो सबका मित्र है ही, सबको सहज ही अपना मित्र बनाकर सबसे सुख-सुविधा तथा सहयोग-सहायता प्राप्त करता रहता है। इसके विपरीत जो दूसरोंके प्रति सदा संदेह करता तथा विरोध-भाव रखता है, वह सहज ही मित्रोंको भी वैरी बनाकर अपने तथा उनके जीवनको भयभीत, सशङ्क, संत्रस्त और दुखी बना देता है।

याद रक्खो—तुम्हारा वैरी कोई भी नहीं है। तुम्हारी स्वेच्छाविहारिणी इन्द्रियाँ, तुम्हारा न जीता हुआ मन और विपरीत निर्णय करनेवाली तुम्हारी बुद्धि ही वैरी है।

'शिव'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ईश्वरकी प्राप्ति सुलभ है या दुर्लभ ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी महाराज)

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

'बुद्धिमान् मनुष्योंकी बुद्धि तथा चतुर मनुष्योंकी चतुराई धन इकट्ठा करनेमें नहीं है, वैभव प्राप्त करनेमें नहीं है तथा भोग-पदार्थ संग्रह करके उनको भोगनेमें नहीं है; बल्कि इस विनाशशील और क्षणभङ्गुर शरीरसे अविनाशी मुझ (भगवान्) को प्राप्त कर लेनेमें है।'

मनुष्य-जीवनकी चरितार्थता ईश्वरकी प्राप्ति कर लेनेमें ही है। 'विषयः खलु सर्वतः स्यात्' विषयभोग तो सब शरीरोंमें बिना परिश्रमके ही प्राप्त हुआ करते हैं।

अब 'ईश्वर-प्राप्ति सुलभ है या दुर्लभ ?' इस प्रश्नका उत्तर यदि अति संक्षेपमें देना हो तो इस प्रकार दे सकते हैं। अधिकारीको ईश्वर-प्राप्ति अति सुलभ है और अनधिकारीको वह दुर्लभ ही नहीं, असाध्य है। अधिकारके बिना संसारकी सामान्य वस्तु भी नहीं मिलती, फिर ऐसी अमूल्य निधि तो कैसे मिलेगी ?

पहले तो, सुलभ क्यों है—यह देखिये। भगवान् श्रीमुखसे गीतामें कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

तात्पर्य यह है कि 'जो योगी अपने मनको अन्यत्र कहीं नहीं जाने देता, उसे नित्य—चौवीसों घंटे मुझमें ही लगाये रखता है, 'तस्य अहं सुलभः' उस योगीको मैं सहज प्राप्त हूँ।' यहाँ 'नित्ययुक्त' शब्द बहुत ध्यान देने योग्य है। एक भक्त-कवियित्रीने इस भावको बहुत सुन्दर रीतिसे समझाया है—

सौ बातोंकी एक ही सुण ले राजा वीर।
सुरत तारमें पोय ले राम-नामका हीर॥

कहती है—सौ बातोंकी एक ही बात कहती हूँ—वीर नरेश ! सुनो, सुरत—स्मरणरूपी तारमें रामनामके हीरको पिरो लो अर्थात् व्यवहारमें जो-जो आचरण करो, उसको भगवत्स्मरणपूर्वक करते रहोगे तो सहज ही संसारसे तर जाओगे। फिर, भगवान्की प्राप्ति जैसे सुलभ है, वैसे ही उस प्राप्तिका साधन भी सुलभ है। उसमें किसी प्रकारके बलिदानकी या कष्ट-सहनकी अथवा पैसा खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं है।

सुलभं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरके यान्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

अभिप्राय यह है कि भगवान्का नाम बिना मूल्य सर्वसाधारणको प्राप्त है और भगवान्का नाम लेनेमें कोई विशेष परिश्रम भी नहीं करना पड़ता क्योंकि जीभ तो मुँहमें है ही और वह मनुष्यकी आज्ञाके अनुसार चलती है। केवल उसको आज्ञा देनेभरकी देर है। इतनी अधिक सुगमता प्रभुने कर रक्खी है, इसपर भी मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति न करके प्रतिदिन नरकमें जाता हुआ दीखता है। इससे बढ़कर अधिक आश्चर्यजनक बात क्या हो सकती है ?

मनुष्यकी ऐसी भयंकर परवशताको देखकर, दयाके सागर भगवान् अपनी कृपापरवशतासे मनुष्यको कहते हैं कि ऐसा सरल साधन भी यदि तुझसे नहीं बन पड़ता है तो,

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

'साधनमात्रका आधार छोड़कर केवल मेरे शरण आ जा, मैं तुझको शुद्ध कर लूँगा और फिर अपने स्वरूपकी प्राप्ति करा दूँगा।' शरण जानेमें भाव कैसा होना चाहिये, इस विषयका श्लोक यह है—

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।
नान्यत् किंचिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम॥

'हे प्रभो ! मैं तो दीन-हीन हूँ, मैं निरा अबोध बालक-जैसा हूँ। मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है और मेरी सारी युक्तियाँ समाप्त हो चुकी हैं। मैं कोई भी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

साधन नहीं कर सकता। तुम्हारे सिवा मेरा और कुछ भी अवलम्बन नहीं है। हे कृपासिन्धो! मुझे अपना लो, मैं तुम्हारी शरणमें हूँ, इसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानता।'

यह लिखते समय शरणागतिका एक श्लोक स्मरणमें आ जाता है, उसे भी देख लीजिये—

परमकारुणिको न भवत्परः
परमशोच्यतमो न हि मत्परः।
इति विलोक्य हरे मयि पामरे
यदुचितं यदुनाथ तदाचर॥

'हे करुणासिन्धु श्रीकृष्ण! आपके-जैसा दयालु दूसरा कोई मैं नहीं देखता तथा मेरे-जैसा दीन-हीन भी दूसरा कोई नहीं है। हे प्रभो! मुझ पामरके ऊपर कृपादृष्टि करो और फिर आपकी दयालुता सुशोभित हो, ऐसा प्रबन्ध करो। अपनी स्थिति मैंने आपके सामने उपस्थित कर दी है, आपको जो उचित जान पड़े वही करो, मैं और क्या कहूँ?'

यहाँतक हमने देख लिया कि भगवान्की प्राप्ति सुलभ तो है। परंतु पहले कहा जा चुका है कि अधिकारीको सुलभ है, इसलिये अब अधिकारका स्वरूप देख लेना चाहिये। अधिकारी होनेमें केवल करना यही है कि अन्तःकरणको शुद्ध कर लेना चाहिये। 'विषयोंके उपभोगसे सुख मिलेगा' इस आशा-से अन्तःकरणमें विषय-प्राप्तिकी इच्छाएँ उठा करती हैं, यही अन्तःकरणका दोष है। अतएव अन्तःकरणको शुद्ध करनेका अर्थ इतना ही हुआ कि इच्छामात्रका त्याग करे। यह त्याग तभी हो सकता है, जब अन्तःकरणमें ईश्वर-प्राप्तिकी तीव्र इच्छा जाग्रत् हो। जबतक तीव्र इच्छा नहीं जागती, तबतक विषय-वासना कम नहीं हो सकती। तीव्र इच्छा अग्निरूप है, इसलिये अन्तःकरणमें रहनेवाली सारी भोग-वासनाओंको वह जला डालती है और तब अन्तःकरण-की कैसी स्थिति होती है, उसका वर्णन करते हुए एक संतने गाया है—

तिन खान-पान नहिं भावै है।
नहिं कोमल बसन सुहावै है॥
तिन बिषय भोग सब खारा है।
हरि-आशिकका मग न्यारा है॥

कबीर साहब भी इस प्रसङ्गको समझाते हुए कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

भाव यह है कि जबतक अन्तःकरणमें संसार है अर्थात् सांसारिक सुखकी एक भी अभिलाषा है, तबतक वहाँ ईश्वरका वास हो नहीं सकता; क्योंकि जगह इतनी अधिक साँकरी है कि उसमें संसार और भगवान् दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

इसी प्रसङ्गको श्रीतुलसीदासजी इस प्रकार कहते हैं—

जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँक रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

यदि सूर्य और रात दोनों एक समय एक साथ रह सकें तो संसार और भगवान् भी रह सकते हैं।

इस प्रसङ्गका उल्लेख करते हुए एक भाईने (चाहे विनोदमें ही) मुझसे कहा था, उसकी याद आनेपर उल्लेख किये बिना मैं नहीं रह सकता। उनका कहना था कि 'भगवान्के घरमें क्या कोई कमी थी जो उसने मनुष्यको एक ही अन्तःकरण दिया। इसीके कारण सारी माथा-पच्ची है; क्योंकि उसमें संसार रहे तो भगवान् न रहे और भगवान्-को रखना हो तो संसारको निकाल बाहर करना होगा। ऐसा न करके भगवान्ने यदि दो अन्तःकरण दिये होते तो एकमें संसार रहता और दूसरेमें भगवान्को रक्खा जाता। ऐसा होता तो सारी उपाधि टल जाती।'

संसारके सामान्य नियमसे देखें तो कोई भी मनुष्य गंदी जगहमें रहनेसे प्रसन्न नहीं होता। साधन होनेपर मनुष्य रेलगाड़ीकी यात्रामें भी दूसरोंके सम्पर्ककी गंदगी-से बचनेके लिये स्वतन्त्र जगहका प्रबन्ध करता है और स्टेशनसे घर जाते समय भी घोड़ागाड़ी या मोटरकी भी स्वतन्त्र व्यवस्था करता है और यहाँ तो भगवान्

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

को पधराना है, अतएव उनके लिये स्थान पवित्र और निर्मल तथा एकान्त होना चाहिये । इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं । प्रत्येक मनुष्य पवित्र और स्वतन्त्र स्थान चाहता है, अतएव यदि भगवान्‌को पधरानेके लिये वैसा स्थान तैयार करता है तो मनुष्य क्या विशेष कर डालता है ? और उसमें बुराई भी क्या है ? किसी सम्मान्य व्यक्ति, राजा या अधिकारीको या किसी साधु-संतको हम घर बुलाते हैं, तब भी स्वच्छताकी और उनको दूसरोंकी उपस्थितिसे परेशानी न हो, इसकी कितनी भारी चिन्ता रखते हैं; तब क्या भगवान्‌के लिये हम इतना भी नहीं कर सकते ?

यहाँतक हमने देख लिया कि ईश्वर-प्राप्ति सुलभ है और इसके लिये अधिकार चाहिये । अधिकारकी प्राप्तिके लिये ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छाको अति तीव्र बनाना चाहिये । अर्थात् ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छाके सिवा दूसरी कोई इच्छा अन्तःकरणमें नहीं रहनी चाहिये ।

'ईश्वर-प्राप्ति दुर्लभ है' 'यह बहुत कठिन काम है' ऐसी-ऐसी बातें कहकर ईश्वर-प्राप्तिको अति विषम बनानेवाले ऐसे ही मनुष्य होते हैं, जिनको करना तो कुछ होता नहीं, केवल व्यर्थकी बातें करते हैं । इस प्रकार बोलनेवालोंमें ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा ही नहीं होती, इसीलिये वे व्यर्थ कहा करते हैं कि ईश्वर मिलता ही नहीं । संसारमें घुल-मिलकर विषयोंको भोगते हुए यदि कहीं ईश्वर सामने मिल जाय तो वे उनसे मिलनेके लिये तैयार होते हैं । देखा-देखी या अपनी प्रतिष्ठा जतलानेके लिये वे कभी-कभी भजन करते भी दीखते हैं; परंतु उनके भीतर ईश्वर विषय-भोगकी प्राप्तिका एक साधनमात्र होता है । पूजा करके वे ईश्वरसे माँगते हैं—'मुझको धन दो, स्त्री-पुत्रादि दो, कीर्ति दो, ऐश्वर्य दो, दीर्घ आयु दो—' इस प्रकार मायिक पदार्थोंकी वे माँग करते हैं । अर्थात् उनमें ईश्वरके भजनसे ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा ही नहीं होती, बल्कि संसारके भोगोंकी प्राप्तिकी ही इच्छा होती है । परंतु मुँहसे यह कहते हैं कि 'भाई ! भजन तो बहुत करते हैं, पर भगवान् मिलते नहीं ।'

इन विषय-विमुग्ध मनुष्योंकी मनोवृत्ति बतानेवाला एक भिखारीका दृष्टान्त दिया जाता है । एक छोटे-से राज्यका राजा बिना वारिसके मर गया, तब राजगद्दी-पर किसको बैठावें, यह प्रजाके लिये एक कठिन प्रश्न हो गया । अन्तमें पुरानी प्रथाके अनुसार एक हथिनी-के सूँड़में एक हार दिया गया और यह निर्णय किया गया कि वह जिसको हार पहना दे, उसीको गद्दी दी जाय । सारे प्रजाजनको आश्चर्यमें डालते हुए उस हथिनीने वह हार एक भिखारीको पहना दिया । प्रजा-जन उस भिखारीके पास गये और उससे विनती करने लगे कि अब यह भिखारीका वेष उतार डालो और राजाकी पोशाक धारण करो तथा राजगद्दीके ऊपर बैठो । भिखारीने कहा कि 'मुझको अपना भिखारीपन नहीं छोड़ना है, इसलिये इसी वस्त्र और इसी व्यवहारके साथ (भिखारीके व्यवहारके साथ) मैं राजगद्दीपर बैठूँगा ।' प्रजाको यह बात पसंद नहीं आयी और उसको गाँवसे निकाल बाहर कर दिया ।

इसी प्रकार विषयी मनुष्योंको विषय-भोगका भिखारी भी रहना है और भगवान्‌की गद्दीके ऊपर भी बैठना है । परंतु जबतक विषय-भोगरूपी चिथड़ा नहीं फेंक दोगे, तबतक राजगद्दीके ऊपर—ईश्वरकी गद्दीके ऊपर बैठनेका अधिकार नहीं मिलेगा ।

मैं अपने निजी अनुभवके ऊपर सच कहता हूँ कि संसार चलाने-जैसा कठिन कार्य ईश्वर-प्राप्तिका कदापि नहीं है । संसारकी रचना ही ऐसी विचित्र है कि उसका संचालन करते हुए मनुष्यका दम घुट जाता है । परंतु ईश्वरकी मायासे दुःखमें सुख-बुद्धि हो गयी है, इसलिये झंझट भी सुखरूप दीख पड़ता है । उदाहरणार्थ—एक गृहस्थ जब बहिनको खुश करने जाता है तो भाभी नाराज हो जाती हैं और जब भाभीको रिझाने जाता है, तब माता क्रोधसे भर जाती है, माताको प्रसन्न करनेमें लगता है तो स्त्री रिसा जाती है और स्त्रीको मनाने जाता है तो पिता कहते हैं कि लड़का स्त्रैण हो गया । इस प्रकार संसार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निभानेमें बहुत कड़वी घूँट पीनी पड़ती है और वह भी मुँह बंद करके तथा हँसते-हँसते । फिर गृहस्थीको चलानेके लिये धन भी कमाना चाहिये । इसके लिये एड़ी-चोटीका पसीना एक करना पड़ता है तथा ऐसा करते हुए भी किसी भाग्यशालीको ही वर्षके अन्तमें आमद-खर्चका आँकड़ा समान पड़ता है । वह तो परम भाग्यशाली कहलाता है, जिसको 'श्रीरोकड़ बाकी' लिखनेका मौका मिलता है ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जबतक अन्तःकरणमें भोगवासना भरी है, तबतक ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा ही नहीं होती । यह बात हमारे गुरुजी बहुत ही सरल युक्तिसे समझाते हैं, यह देखने योग्य है ।

वे कहते हैं कि एक मनुष्यके पास एक ही बर्तन है और उसमें उसने छाछ डाल रक्खी है । संध्याको ग्वाला गाय दुहने आता है और बर्तन माँगता है । अब उस मनुष्यको छाछ भी रखनी है और गाय भी दुहवानी है । पर बर्तन एक ही है फिर क्या किया जाय ? छाछ रखकर उसी बर्तनमें गाय दुहवाये तो दूध बिगड़ जायगा और यों छाछ भी चली जायगी तथा दूध भी चला जायगा । इसलिये यदि उस आदमीको दूध ही आवश्यक है तो छाछका मोह छोड़ना चाहिये । भाव यह है कि दूधरूपी ईश्वरकी प्राप्ति करनी हो तो संसारके सुखकी इच्छारूपी छाछका पूर्णतया त्याग करना चाहिये; क्योंकि उस बर्तनमें यदि छाछका स्पर्श भी हो जायगा तो दूध दूधरूपमें नहीं रह सकेगा । संसारके अधिकांश मनुष्य इसी प्रकारके होते हैं और ईश्वर-प्राप्ति कठिन है---ऐसा व्यर्थ ही शोर मचाते रहते हैं ।

इसी बातको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें बहुत ही सरस रीतिसे समझाते हुए कहा है—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

भगवान् कहते हैं कि जबतक मनुष्यके अन्तःकरणमें भोग-वासना है, तबतक वह जन्म-मरणके चक्करमें घूमा ही करता है । परंतु पूर्वपुण्यके प्रतापसे तथा इस जीवनमें सदाचारके सेवनसे जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वही मनुष्य मेरा भजन करके मुझको प्राप्त करता है । यहाँ भी भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है कि भोग-वासनाओंसे दूषित अन्तःकरण जन्म-मरण प्रदान करता है, और विशुद्ध यानी वासनारहित अन्तःकरणसे मनुष्यको मेरी प्राप्ति होती है ।

यही बात श्रुति भगवती इस प्रकार कहती है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ (कठ०)

अर्थात् जबतक मनुष्यने अपने अन्तःकरणको निर्मल नहीं किया, जबतक उसका चित्त शान्त न हुआ और जबतक मन भोगकी इच्छाओंका ही चिन्तन करता रहता है, तबतक केवल पुस्तकें बाँचनेसे या चर्चा करनेसे ही ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती । अभिप्राय यह है कि अन्तःकरणको विषय-प्राप्तिकी इच्छासे मुक्त किये बिना ईश्वर-प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है ।

इससे यह सिद्ध हो गया कि अधिकारीके लिये अर्थात् जिसमें तीव्र इच्छा है और इसलिये जिसने भोग-वासना मात्रका त्याग करके अन्तःकरणको विशुद्ध बना लिया है, इस प्रकारके अधिकारीके लिये ईश्वर-प्राप्ति अति सुलभ है । परंतु जिसने यह अधिकार प्राप्त नहीं किया, अर्थात् जो वासनाओंका त्याग नहीं कर सकते, ऐसे अधिकारीके लिये ईश्वर-प्राप्ति केवल दुर्लभ ही नहीं, बल्कि असम्भव है ।

श्रीबोधसारमें ठीक ही लिखा है—

वाङ्मयं खं हि सर्वत्र वाचा मूकस्य दुर्लभम् ।
चिन्मयं ब्रह्म सर्वत्र विद्याहीनस्य दुर्लभम् ॥

तात्पर्य यह है कि शब्द गुणवाला आकाश तो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है; तथापि गूँगा मनुष्य एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता । उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप ब्रह्म भी सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, तथापि अधिकार बिना उसका अनुभव—साक्षात्कार नहीं होता ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

परमार्थ-पत्रावली

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(१)

सादर प्रणामपूर्वक हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) शरीर आदिसे आत्मा अलग होते हुए भी मनुष्यने यह स्वीकार कर लिया है कि मैं शरीर हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं भिखारी हूँ, मैं लड़का हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ इत्यादि । इसी कारण यह शरीरके सुख-दु:खसे सुखी-दुखी होता रहता है । जब मनुष्य विवेकसे यह समझ ले कि 'मैं शरीर नहीं हूँ, मेरा और इसका कोई सम्बन्ध नहीं है; अत: न तो यह शरीर मैं हूँ और न यह मेरा ही है ।' फिर इसके सुख-दु:खका इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । शरीरसे अपनेको अलग समझनेका सरल उपाय उसके द्वारा किसी प्रकारके सुख-भोगकी आशा या कामना न करना है, जो कि विचार या विश्वासपूर्वक सहजमें ही हो सकता है ।

(२) समस्त प्राणियोंमें परमात्मा तो एक है । वह कहीं जाता-आता भी नहीं । सर्वत्र समभावसे व्याप्त है, पर जीव एक नहीं है, अनेक है । उसका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें और लोकान्तरमें जाना-आना सूक्ष्म शरीरके सम्बन्धसे होता है ।

(३) ध्यानकी बातें तत्त्वचिन्तामणिमें अनेक प्रकारसे लिखी हैं, अपनी रुचिके अनुसार पढ़ लें; पत्रमें कहाँतक लिखी जायँ ।

(४) जो कुछ दीखता है, वह उस रूपमें नहीं है—यह तो प्रत्यक्ष है, इसे तो सभी मानते हैं; क्योंकि दृश्यमात्रका प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है, वह कभी भी एक रूपमें नहीं रहता । आप विचार करें—इन्द्रियोंसे जो कुछ दिखायी देता है, क्या बुद्धिसे उसकी अनित्यता प्रतीत नहीं होती ? यदि दिखायी देती है तो हमें बुद्धिके ज्ञानका आदर करके यह क्यों नहीं मान लेना चाहिये कि इस विनाशशील दृश्यसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है । यह तीन कालमें है या नहीं—यह निर्णय करनेके झंझटमें न पड़कर साधकको चाहिये कि इससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर ले, जिसका सम्बन्ध नहीं रहेगा, उसपर इसका कोई प्रभाव नहीं रहेगा ।

× × ×

(२)

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचार विदित हुए । आपका पत्र पढ़नेमें और उत्तर देनेमें यदि मैं तकलीफ मानूँ तो यह मेरी कमजोरी है । वास्तवमें तो जो कुछ मनुष्यको मिला है, सब उसी विश्वेश्वरका है । उसे जगज्जनार्दनकी सेवामें लगा देना ही उसका कर्तव्य है । उसमें तो आनन्द ही होना चाहिये ।

आपकी आयु तेइस वर्षकी है और आपके माता-पिता आपका विवाह करना चाहते हैं तो उनकी प्रसन्नताके लिये एवं जिस वासनाको विचारद्वारा न मिटाया जा सके, उसे नियमित भोगद्वारा उसके परिणामका दर्शन करके मिटानेके लिये भी विवाह करना अच्छा है ।

आपका इरादा मोक्ष पानेका है—यह बड़ी अच्छी बात है, पर मोक्ष पानेका उपाय घर छोड़ना है, यह समझना गलत है । यदि घर छोड़नेसे मोक्ष मिलता होता तो आजकलके साधु-समाजको क्यों नहीं मिल जाता ?

सद्गुरुकी शरणमें जाना बड़ा अच्छा है, पर पहले

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सद्गुरुकी पहिचान कैसे हो ? अतः साधकको चाहिये कि वह जिस परिस्थितिमें है वहीं रहकर अपने विवेकका आदर करे और विवेकसे जो कुछ प्राप्त है, उसका विवेकपूर्वक सदुपयोग करे । प्राप्त शक्ति, योग्यता और वस्तुओंको सब समुदायके हितमें लगाते रहना, बदलेमें उनसे कुछ न लेना, उनसे किसी प्रकारके सुखभोगकी आशा न करना, यही प्राप्तका सदुपयोग है । आपने अबतक जगत्से जो कुछ लिया है, उसे वापिस लौटाकर जगत्से उऋण होइये । उससे पहले घर छोड़नेकी बात सोचना कैसे उचित हो सकता है ? बन्धनसे छूटनेका नाम मोक्ष है । किसीका देनेदार रहकर मनुष्य मुक्त कैसे हो सकता है ? गम्भीरतासे विचार करें ।

आपने लिखा कि संसार बहुत विकारयुक्त लगता है, पर साथ ही आपका शरीर, जो संसारका ही एक हिस्सा है, वह विकारवान् क्यों नहीं लगता ? उसे अपना स्वरूप मानते हुए या अपना मानते हुए आप संसारका त्याग कैसे कर सकेंगे ?

यदि संसारमें रहते हुए होनेवाले साधन कष्टकर हैं तो क्या मनुष्य संसारसे बाहर हो सकता है ? वह संसारसे बाहर कहाँ जायगा ? जहाँ जायगा वहीं उसके साथ संसार रहेगा । अतः किसी प्रकारके सुखके लोभमें पड़कर या मानसिक कष्टके भयसे घर छोड़ा जाय तो उसे कभी साधनमें सुगमता नहीं मिल सकती । जबतक मनुष्य किसी भी परिस्थिति, व्यक्ति या अवस्थासे सुखभोगकी आशा रखता है, वह पराधीन ही बना रहता है । पराधीनतामें कहीं भी सुख नहीं है ।

भगवान्का चिन्तन तो उनके प्रेमसे होता है । प्रेम उनके साथ सम्बन्ध होनेसे होता है । सम्बन्ध विश्वाससे होता है । अतः साधकको चाहिये कि एक भगवान्को छोड़कर किसीपर विश्वास न करे, किसीको अपना न माने और किसीमें आसक्त न हो,—इस प्रकार सब ओरसे प्रेम हटकर जब एकमात्र भगवान्में हो जायगा, तब अटल स्मरण अपने आप होगा । इसके विपरीत जबतक किसी भी व्यक्तिमें मोह रहेगा, वह चाहे कुटुम्बवाला हो, चाहे साधु-वेषधारी हो, भगवान्का अटल चिन्तन नहीं हो सकेगा । औरकी तो कौन कहे, अपने शरीरमें मोह रहते हुए भी अटल भगवच्चिन्तन नहीं हो सकता । घर और कुटुम्बीजनोंमें मोह और आसक्तिका त्याग करना ही साधन है । उनकी सेवाका त्याग करके उनसे अलग हो जाना साधन नहीं है ।

आपने लिखा कि 'कुटुम्बमें मानस-दुःख बहुत है, इससे मन ठीक नहीं रहता ।' इसपर विचार करना चाहिये कि इसका कारण क्या है ? विचार करनेपर पता चलेगा कि दुःखका कारण दूसरा कोई नहीं है । दुःख अपना माना हुआ है । अतः साधकको चाहिये कि कुटुम्बको साधन-सामग्री समझे । भगवान्के नाते सबके मनकी हितपूर्ण बात पूर्ण करता रहे, उनसे अपने मनकी बात पूरी करानेकी आशाका सर्वथा त्याग कर दे, उनपर अपना कोई अधिकार न माने और उनके अधिकारकी रक्षा करता रहे ।

ऐसा करनेसे मन शुद्ध हो जायगा । हृदयमें शान्ति उमड़ पड़ेगी । सब प्रकारकी कठिनाइयाँ उस प्रभुकी कृपासे अपने-आप मिट जायँगी । समझना चाहिये कि अधिकार-लालसा और दूसरोंसे सुखकी आशा ही कुटुम्बको दुःखदायी बनाती है ।

जिसके द्वारा घरमें रहकर साधन नहीं हो सकता, वह घर छोड़कर साधन कर सकेगा, यह समझना भूल है । आसक्ति और स्वार्थका त्याग ही साधनकी नींव है जो हरेक परिस्थितिमें किया जा सकता है । जो साधक अपने साधनके लिये उन वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितिकी आशा करता है, जो उसे अपने-आप प्राप्त नहीं है, वह अपने अमूल्य मनुष्य-जीवनका समय व्यर्थ खो रहा है । साधकको यही चाहिये कि भगवान्की

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कृपासे उसे वर्तमानमें जो कुछ प्राप्त है, उसका ठीक-ठीक उपयोग करके सब प्रकारकी कामनासे रहित हो जाय और एकमात्र प्रभु-प्रेम प्राप्त करनेके लिये लालायित हो उठे।

आपने लिखा कि 'मेरे त्यागसे घरवालोंको कोई हर्ज नहीं होगा'—इसपर गम्भीरतासे विचार करें। त्याग क्या है? घर छोड़ देनेका नाम त्याग नहीं है। आसक्ति और स्वार्थका त्याग ही वास्तविक त्याग है।

माता-पिताकी सेवा करनेवाले तीन भाई और हैं, यह ठीक है, पर वे जो सेवा करेंगे, उससे तो उनके कर्तव्यका पालन होगा, आपका नहीं। उससे आप उनके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकेंगे, अपितु आपके वियोगसे जो माता-पिताको मोहवश शोक होगा, उस दोषके भागी आप बनेंगे।

'विवाह करके आप उनके लिये बोझा बनेंगे, उनको आर्थिक दु:ख होगा'—यह मानना भी आपकी भूल है। अपना बोझा आप उनपर क्यों डालना चाहते हैं, जब कि उन्होंने आपको समर्थ बना दिया है। अब तो उनकी भी आर्थिक सहायता करना आपका फर्ज हो गया है न कि उनसे सहायता लेना। लेनेका नाम सेवा नहीं है।

यह सर्वथा सत्य है कि मनुष्य-जीवन आत्मकल्याण-के लिये है। अत: उसके लिये प्रभुके चरण-कमलोंमें मन लगाना परम आवश्यक है। सद्गुरुकी शरण लेना भी बड़ा अच्छा है, पर यह भी समझना परम आवश्यक है कि हाड़-मांसका शरीर सद्गुरु नहीं है। महापुरुषों-का जो दिव्य-ज्ञान है, वही गुरुतत्त्व है। किसी व्यक्ति-के शरीरको गुरु मानकर उसमें मोह करनेसे तो साधनमें उलटा विघ्न हो जाता है। अत: साधकको चाहिये कि जिसपर उसकी श्रद्धा हो, उसके दिव्य-ज्ञानका आश्रय ले। ऐसा सद्गुरु यदि प्रत्यक्षमें दिखलायी न दे तो पूर्वमें होनेवाले महापुरुषोंके दिव्य-ज्ञानका आश्रय लेकर या प्रभुका आश्रय लेकर साधनपरायण हो जाय।

इस कार्यके लिये विलम्ब करना आवश्यक नहीं है, न कोई सोचनेकी ही बात है। जहाँ और जिस परिस्थितिमें आप हैं, वहीं तत्काल साधन आरम्भ कर दीजिये। माया-जाल कहीं बाहरसे नहीं आया है, आपका ही बनाया हुआ है। अत: इससे निकलनेमें आप सर्वथा समर्थ हैं; क्योंकि इसके लिये आप जो कुछ कर सकते हैं; उससे अधिककी जरूरत नहीं है। तथा अप्राप्त वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिकी भी आवश्यकता नहीं है। अभी जो अपने विवेकका अनादर और प्राप्त शक्ति और समयका दुरुपयोग कर रहे हैं, उसका त्याग करना है और उनका सदुपयोग करना है, जो कि बड़ी ही सुगमतासे किया जा सकता है।

आश्चर्य तो इस बातका है कि आप मुझसे परामर्श भी करना चाहते हैं और उत्तर भी अपने ही मनका चाहते हैं, पर मुझे उसमें आपका हित प्रतीत न होता हो, तब मैं वह सम्मति कैसे दूँ। आप सब बातों-पर गम्भीरतासे विचार करें, उसके बाद आपको जो उचित जान पड़े सो करें।

(३)

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आपको मालूम होना चाहिये कि मैं स्वामी नहीं, एक साधारण गृहस्थाश्रमी मनुष्य हूँ। जातिका भी वैश्य हूँ।

× × ×

आप सत्सङ्गके लिये यहाँ आना चाहते हैं, यह अच्छी बात है। माता-पिताको राजी करके उनकी आज्ञा लेकर ही आना चाहिये। सत्सङ्गकी चाह भी सत्सङ्गका फल दे दिया करती है; क्योंकि वास्तवमें चाह ही प्रधान है।

आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे इस प्रकार हैं—

(१) सब प्रकारसे वीर्यकी रक्षा करना, स्त्रीका सङ्ग मन, इन्द्रिय और शरीरसे न करना, स्त्रियोंमें आसक्त

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पुरुषोंका भी सङ्ग न करना, उनमें रुचि उत्पन्न करनेवाले साहित्यको न पढ़ना, वीर्यनाशसे होनेवाली हानियोंको समझना—ये सभी ब्रह्मचर्य-रक्षाके साधन हैं।

(२) किसी भी प्राणीको अपने सुखभोगके लिये किसी प्रकारका कष्ट न देना, किसीका बुरा न चाहना, किसीके दोषोंको न देखना, न कहना और न चिन्तन ही करना, किसीपर क्रोध न करना, किसीको गाली न देना, किसीको चोट न पहुँचाना—ये सभी अहिंसाके साधन हैं।

(३) किसी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितिमें ममता न करके अर्थात् उन सबको अपना और पराया न मानकर सबको भगवान्‌का मान लेनेसे राग-द्वेषका नाश हो जानेपर सुख-दुःखमें समता आ सकती है।

(४) परमात्माका तत्त्व समझ लेनेसे या इस बातपर दृढ़ विश्वास होनेसे सर्वत्र परमात्माका दर्शन हो सकता है। प्रेम होनेपर सर्वत्र प्रेमास्पदके दर्शन होने लग जाते हैं।

(५) मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे सम्बन्ध टूटकर जब पुरुष अकेला रह जाता है, तब उस स्वरूप-स्थितिको ही 'कैवल्य' कहते हैं।

(६) जंगलमें रहनेसे ही एकान्त नहीं होता; क्योंकि वहाँ भी असंख्य जातिके प्राणी निवास करते हैं। वास्तवमें एकान्त तो वही है, जिस स्थितिमें साधक सबसे रागरहित होकर एकमात्र प्रभुसे ही घुल-मिला रहता है।

(७) समस्त भोग-सामग्रीके संग्रहके त्यागको अपरिग्रह कहा है। अतः किसी भी भोग्य वस्तु और व्यक्तिको अपना न मानना और उनसे अनासक्त रहना ही अपरिग्रहका सरल साधन है।

(८) कोई भी वस्तु इच्छासे नहीं मिलती—इस तत्त्वको समझकर इच्छारहित हो जाना ही संतोषी बननेका सरल और सुगम उपाय है। इच्छारहित मनुष्य ही संतोषी हो सकता है और वही सुखी हो सकता है।

(९) भगवान्‌में प्रीति होनेका वास्तविक और सहज उपाय यही माळूम होता है कि साधकको जहाँ-जहाँ भगवान्‌से भिन्न किसी दूसरेमें प्रीति माळूम हो, वहाँ-वहाँसे प्रीति उठा ले, जिसके साथ जो सम्बन्ध मूढ़तासे स्वीकार कर लिया है, उसे छोड़कर एकमात्र भगवान्‌को ही संदेहरहित विश्वासपूर्वक अपना मानकर प्रेम करे।

(१०) निद्राका सदुपयोग करनेसे अर्थात् थकावट दूर करके क्रियाशक्ति प्राप्त करनेके लिये जितने समय विश्राम करना आवश्यक हो, उससे अधिक न सोनेसे और आवश्यक समयपर निश्चिन्त होकर सो जानेसे अनावश्यक निद्राका त्याग अपने-आप हो जाता है।

(११) मनको वशमें करना मनोदण्ड है। इसीको शम कहते हैं। वाणी आदि इन्द्रियोंको वशमें कर लेना ही वाग्दण्ड है, इसीको दम कहते हैं। शरीरकी व्यर्थ चेष्टाओंका त्याग ही कर्मदण्ड है।

(१२) भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेसे, उनके गुण और महिमाका ज्ञान होनेसे और संसारका ध्यान छोड़ देनेसे भगवान्‌का ध्यान सुगमतासे हो सकता है।

(१३) भगवान्‌के नाम, गुण, लीला, तत्त्व एवं प्रभावकी बातोंको विश्वास और प्रेमपूर्वक सुनना ही श्रवण है एवं उनका वर्णन करना ही कीर्तन है। भगवान्‌से सम्बन्ध होनेसे ये साधन सुगम हो जाते हैं।

(१४) स्त्री, पुत्र, गृह एवं सम्पत्ति आदिको अपना न मानना और ये सब उसीके हैं, जिसका समस्त विश्व है, यह मान लेना ही भगवान्‌के सर्वस्व अर्पण करना है। इनके साथ-साथ स्वयं अपनेको भी भगवान्‌का मानकर समर्पित हो जाना चाहिये। इसीमें साधकका कल्याण है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

(१५) भगवान्में प्रेम होनेसे उनके भक्तोंमें प्रेम होना स्वाभाविक है।

(१६) सबको भगवान्का मानकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये उन्हींकी कृपासे मिले हुए विवेकसे, उन्हींसे प्राप्त हुए पदार्थ और सामर्थ्यके द्वारा सबको सुख पहुँचाना, माता-पिता और वृद्ध पुरुषोंका हमपर जो अधिकार है, उसको पूरा कर देना, उनसे बदलेमें कुछ नहीं चाहना—ऐसा करनेसे भगवान्के भक्तोंकी, वृद्धोंकी और भगवान्की—सबकी सेवा बड़ी ही सुगमतासे की जा सकती है।

(४)

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचार विदित हुए। आपके कार्डोंका उत्तर पत्रद्वारा भी आपको दिया गया था। 'कल्याण'में तो आपके पत्रोंकी प्रतिलिपि पीछे छपी होगी; फिर आपको डाकसे उत्तर न मिलनेका कारण समझमें नहीं आया।

पत्रोत्तर एक पक्षके भीतर देनेके लिये लिखा, सो मेरे सामने परिस्थिति ही कुछ ऐसी है कि मैं पत्रोंका उत्तर यथासमय इतना शीघ्र नहीं दे पाता। काम बहुत अधिक रहते हैं, समय बहुत कम मिलता है। आँखोंकी ज्योति खराब हो जानेके कारण पत्र दूसरोंसे ही लिखवाने पड़ते हैं।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) साधकके जीवनमें वैराग्य तो होना ही चाहिये। जबतक सुखभोगकी लालसा है, उसके साधनोंमें राग है, तबतक संतोषजनक साधन कैसे बन सकेगा ? अतः बिना वैराग्यके सभी साधन अधूरे हैं—यह बात सर्वथा ठीक है। इसमें कोई विवाद नहीं है। संसारके भोगोंमें दुःख और अनित्य-बुद्धि करनेसे तथा प्राप्त विवेकका आदर करके प्राप्त वस्तुका सदुपयोग करनेसे बड़ी सुगमतासे वैराग्य हो सकता है एवं प्राप्तका दुरुपयोग न करके सदुपयोग करनेमें हरेक मनुष्य स्वतन्त्र है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। देहात्म-बुद्धि भी अविवेक-सिद्ध है। विवेकका आदर करनेपर सुख-दुःखसे अतीत परमात्माकी प्राप्तिकी लालसाका जाग्रत् हो जाना भी स्वाभाविक है। विचार करनेपर समाधान होनेमें क्या अड़चन है ?

(२) ईश्वर-विश्वास होनेका मुख्य कारण तो यह मालूम होता है कि जिनपर विश्वास नहीं करना चाहिये, जो विश्वासके पात्र नहीं हैं, जो नित्य नहीं हैं, परिवर्तनशील हैं, ऐसे बहुत-से पदार्थों, व्यक्तियों और परिस्थितियोंपर मनुष्यने विश्वास कर लिया है। उनसे सुखप्राप्तिकी आशा कर रक्खी है। उन्हींके साथ-साथ ईश्वरपर विश्वास करना चाहता है। यदि उन सबका विश्वास और माना हुआ सम्बन्ध छोड़कर एकमात्र प्रभुपर विश्वास कर ले और उनसे ही सम्बन्ध जोड़ ले, उनको अपना मान ले तो सहजमें ही विश्वास दृढ़ हो सकता है।

(३) परमात्माकी महिमा सुनी तो बहुत जाती है, पर जबतक उसे मनुष्य मान नहीं लेता, तबतक उस महिमाका जीवनपर असर नहीं पड़ता।

(४) अभिनिवेशरूप क्लेश, जिसको मरण-भय भी कहा जा सकता है, उसका सर्वथा नाश भगवान्की कृपासे मिले हुए विवेकका आदर करके जब मनुष्य इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता है कि 'मैं शरीर नहीं हूँ, इसके नाशसे मेरा नाश नहीं होता; मैं अजर-अमर हूँ'—तभी हो सकता है; या प्रभुपर सर्वतोभावसे निर्भर हो जानेपर हो सकता है, अन्यथा होना असम्भव नहीं तो कठिन तो है ही।

(५) 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' आदि प्रभु-महिमाको जान लेने या दृढ़ विश्वासपूर्वक मान लेनेपर अनवरत तैल-धारावत् भगवत्स्मरण न हो, ऐसी बात नहीं है। मनुष्य

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

केवल श्रवणको ही जान लिया मानकर इस प्रकारकी शङ्का करने लगता है ।

अस सुभाव कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥
उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु कोउ नाहीं ॥

—ये तो विश्वास करनेकी बातें हैं । इनके लिये दिमागकी जरूरत नहीं, हृदयकी जरूरत है। इनपर दिमाग लगाकर व्यर्थ बुद्धिको परिश्रम देनेसे उसका क्षुब्ध और अशान्त होना निश्चित ही है ।

लिखते-लिखते आँसुओंका न रुकना, कण्ठावरोध हो जाना भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका दर्शन है। इसमें साधकको किसी प्रकारकी अपनी विशेषताका अभिमान नहीं होना चाहिये ।

मन, प्राण और शरीरको तो प्रभु-प्रेमके रूपमें ही सुख मिल सकता है। उसकी चिन्ता साधकको क्यों होनी चाहिये । वे सब जिसके हैं, वे स्वयं उनकी खबर रख सकते हैं ।

(६) गोपी-प्रेममें और संतोंने जो प्रेमके लक्षण किये हैं, उनमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि गोपियोंको अपना शरीर और कुटुम्बी-जन या घरकी कोई भी वस्तु सुख-भोगके लिये आवश्यक नहीं थी । वे इन सबको भगवान्‌की ही समझकर उन्हींको आनन्द प्रदान करनेके लिये इनकी रक्षा और सेवा किया करती थीं । उनको प्राण-विछोहका डर कभी नहीं था ।

(७) विश्वास न होनेका कारण दूसरे प्रश्नके उत्तरमें लिखा ही है। विश्वास ही साधनका प्राण है। बिना विश्वासके साधन टिक ही नहीं सकता ।

(८) जप किया जाता है; इस कारण वह क्रियात्मक साधन है । जो मनसे चिन्तन या ध्यान मानसिक क्रियाके रूपमें साधक श्रमपूर्वक करता है, वह भी क्रियात्मक ही साधन है । इससे वह स्मरण, जो प्रभुसे श्रद्धापूर्वक सम्बन्ध हो जानेपर प्रेमपूर्वक होने लगता है, बहुत श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें क्रिया या श्र[म] नहीं है । अतः वह निरन्तर हो सकता है । उस[के] बाद जो चिन्तन और ध्यान होता है, वह तो भगवान्‌[की] परम कृपाका प्राकट्य है ।

अन्यमनस्क भगवन्नामका उच्चारण तो स्मरण न[हीं] है । इसमें कहना ही क्या है ? उनके स्वरूपका ध्या[न] भी जो श्रमपूर्वक किया जाता है, वह भी वह स्म[रण] नहीं है, जो कि प्रेमसे अपने-आप स्वभावसे होनेवा[ला] स्मरण है, जिसमें कर्तापनका भी भास नहीं है ।

(९) भगवान्‌की लीला, कथा, धाम, नाम इनमें किसी एकका भी स्मरण स्मरण कहा जा सकता है । य[दि] वह प्रेमवश अपने आप होता हो और उत्तरोत्तर प्रे[म]में नवीनता उत्पन्न करनेवाला हो ।

(५)

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचा[र] विदित हुए । उत्तर इस प्रकार है—

(१) आपने 'कल्याण' के लेखका उदाह[रण] देकर श्वासद्वारा होनेवाले जपके विषयमें पूछा, [सो] उसमें जो कुछ लिखा है, वह ठीक है । पर स[ब] साधकोंके लिये कोई एक ही युक्ति या एक ही प्रका[र] ठीक हो ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि हरेक साधकक[ी] योग्यता, विश्वास और रुचिमें भेद होता है । जि[स] साधनमें इन तीनोंकी एकता नहीं हो जाती, वह साध[न] साधकका जीवन नहीं बनता, उसमें परिश्रम मात्र होता है । इस कारण थकावट आती है और व[ह] साधन तैलधारावत् निरन्तर नहीं हो सकता तथ[ा] साधनका अभिमान रहनेके कारण भी प्रभुकी महिमाक[ा] अनुभव और उनपर निर्भर होनेका भाव भी जाग्र[त] नहीं होता ।

(२) जपके साथ स्मरणकी बड़ी आवश्यक[ता] है । स्मरण और चिन्तन जो किया जाता है, व[ह]

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

निरन्तर नहीं हो सकता, पर प्रभुपर दृढ़ विश्वासपूर्वक सम्बन्ध हो जानेपर, उनमें अपनापन हो जानेपर जो अपने-आप उनका मधुर स्मरण होता है, वही निरन्तर हो सकता है; क्योंकि उसमें अलौकिक रस है। उस रसका स्वाद मिल जानेके बाद साधक अपने प्रभुको भूलनेमें असमर्थ हो जाता है। व्रजगोपियाँ इसकी साक्षी हैं।

(३) आप यदि श्वासद्वारा जप करना चाहें तो उसमें संख्याकी गणना रखना मेरी समझमें आवश्यक नहीं है। संख्या तो उस जपकी रखनी चाहिये जो नियमित रूपमें करना हो। निरन्तर किये जानेवाले जप और स्मरणके लिये संख्याकी आवश्यकता नहीं है।

(४) श्वासद्वारा जप करनेवालेको जिह्वासे उपांशु जप करनेकी भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि ऐसा करनेसे मन स्थिर होना कठिन है। कारण, उसकी गति दोनों ओर होती रहती है।

(५) श्वास आते-जाते समय जो उसका कण्ठ-प्रदेशमें स्पर्श होता है, उसीके साथ जपकी भावना और उस नामके अर्थ-स्वरूप अपने इष्टका स्मरण अपने-आप होते रहना चाहिये। आप एक श्वासमें एक नाम या अनेक नाम जैसा सुगमतासे ले सकें, वैसा करनेसे बीचमें दूसरा संकल्प न हो, वही आपके लिये अच्छा होगा, यह मेरी राय है।

(६) संसारका कोई काम आपके जिम्मे नहीं रहा—यह प्रभुकी बड़ी भारी कृपा है। खाना-पीना, सोना-बैठना आदि जो कुछ शरीरसम्बन्धी काम बचे हों, उनको भी यदि आप अपना काम न मानें, भगवान्‌का काम समझकर उन्हींकी दी हुई सामर्थ्य और सामग्रीद्वारा उनकी प्रसन्नताके लिये करते रहें, प्रत्येक प्रवृत्तिमें ऐसा भाव रक्खें कि मेरेद्वारा इस कामको ठीक-ठीक होता देखकर भगवान्‌को इतनी प्रसन्नता होती है, जिसकी कोई हद नहीं है। इस भावसे भावित होकर हरसमय प्रभुके प्रेममें विभोर रह सकें तो यह बहुत ही उत्तम साधन है।

(७) आपकी दिनचर्यामें व्यर्थ समय न खोनेकी बात लिखी यह भी बड़ी अच्छी बात है। यदि समय व्यर्थ बातोंमें और व्यर्थ संकल्पोंमें न जाय तो फिर प्रभु-स्मरणके अतिरिक्त होगा ही क्या ? निरन्तर स्मरण होनेमें कठिनता ही क्या रह गयी ? यह विचारणीय है।

(८) आशीर्वाद देनेकी तो मुझमें सामर्थ्य नहीं है। यदि मेरे आशीर्वादसे किसीको भगवत्प्राप्ति हो सकती है, ऐसा मुझे विश्वास हो जाय तो जगत्‌में किसी भी प्राणीको मैं उससे वञ्चित न रहने दूँ। पर क्या किया जाय, मुझमें ऐसी कोई शक्ति ही नहीं है।

(९) जो मनुष्य प्रभुकी कृपापर दृढ़ विश्वास करके उसके आश्रित हो जाता है, जिसके हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी आवश्यकता जाग पड़ती है, भगवत्प्राप्तिके बिना जो चैनसे नहीं रह सकता, उसे भगवान्‌की प्राप्ति इस जन्मके थोड़ेसे समयमें ही हो सकती है, जीवन-समाप्ति तकका विलम्ब नहीं होता; क्योंकि भगवान् और साधकमें देश-कालका अन्तर नहीं है। वह सदैव साधकके पास विद्यमान है और उसके भावको देखता रहता है।

(६)

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपकी इच्छा मुझसे मिलनेकी है, यह आपके प्रेमकी बात है। वास्तवमें मुझमें कोई विशेषता नहीं है। जहाँ कहीं जो कुछ विशेषता आपको प्रतीत होती हो, उसे प्रभुकी ही विशेषता समझकर उनके दर्शनकी अभिलाषाको प्रबल करना चाहिये, अन्य व्यक्तियों और वस्तुओंमें क्या रक्खा है ?

आप 'हरे राम' मन्त्रका जप और एक अध्याय

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गीताका नित्य-पाठ करते हैं—यह बड़ी अच्छी बात है। मन्त्र-जपके साथ-साथ जिनके वे नाम हैं, उनको भी गुण और प्रभावके सहित याद रक्खें और उन्हींको अपना समझें एवं गीता-पाठ करते समय यह समझनेकी कोशिश करें कि भगवान्ने क्या कहा है; उनके आज्ञानुसार मुझे अपने जीवनमें कौन-सा परिवर्तन करना है और मैं उस प्रकार अपना सुधार क्यों नहीं कर रहा हूँ। ऐसा करनेसे भगवान् शीघ्र मिल सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है। भगवान्को प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा होनी चाहिये। जपकी संख्या न रक्खी जाय तो कोई हानि नहीं, पर हर समय प्रभुको याद रखना परम आवश्यक है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) भगवान्का होकर उनकी कृपासे उनका तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, सत्संग भी इसके लिये सहायक है।

(२) संसारकी असारता और अनित्यताको जानकर उसका सम्बन्ध त्याग देनेपर अर्थात् उसको अपना न माननेपर और उससे किसी प्रकारके सुख-भोगकी इच्छा न रखनेपर उससे अनायास ही वैराग्य हो जाता है एवं प्रभुको अपना मान लेनेपर, उनकी महिमापर दृढ़ विश्वास कर लेनेपर उनसे प्रेम भी अनायास हो सकता है।

(३) किसीको भी अपना मान लेनेका नाम ममता है। किसी भी सांसारिक वस्तु और व्यक्तिको सुखरूप मानकर जो उसमें प्रियता होती है, उसका नाम आसक्ति है। सांसारिक सुखकी इच्छाका त्याग करके प्रभुकी प्रसन्नताके लिये कर्तव्य-पालन-बुद्धिसे तथा कर्म करनेकी आसक्तिको मिटाकर कर्मोंका करना ही आसक्तिरहित होकर करना है।

(४) सब कुछ उसी अनन्तशक्तिसम्पन्न प्रभुसे ही प्रकट हुआ है। अतः जिस शरीरको एवं वस्तु और व्यक्तियोंको मैंने भूलसे अपना मान लिया है, वे वास्तवमें मेरे नहीं हैं। जिस परमात्माका यह विश्व है, उसीका यह सब कुछ भी है। अतः प्रभुकी कृपासे मिली हुई सामर्थ्य और सामग्रीको प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रभुके काममें लगा देनेपर अर्थात् प्रभुकी प्रेरणासे उसका यथावश्यक उनकी सेवामें उपयोग करनेपर समस्त चेष्टा भगवान्के ही लिये अपने-आप होने लगती है; कोई कठिनाई नहीं रहती।

(५) भगवान्को याद रखना ही उनका स्मरण है। यही आगे चलकर चिन्तन और ध्यान बन जाता है। भगवान्पर श्रद्धा और उनके साथ अपनत्व होनेपर स्मरण और प्रेम बड़ी सुगमतासे हो सकते हैं।

(६) दूसरे प्रश्नके उत्तरमें लिखे अनुसार संसारका सम्बन्ध छोड़ना ही उसे दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रसे छेदन करना है एवं पहले प्रश्नके उत्तरमें लिखी हुई साधनासे उनकी खोज की जा सकती है।

(७) दूकानदारी करते समय यह भावना रक्खे कि प्रभुने मुझे जो सामर्थ्य और सामग्री प्रदान की है, एक दूकानदारका स्वाँग दिया है तो उनकी प्रसन्नताके लिये ग्राहकोंके रूपमें उनकी सेवा करना अर्थात् उनकी आवश्यकताकी पूर्ति प्रभुके आज्ञानुसार करते रहना ही मेरा काम है। उनकी दूकानको और इस शरीरको सुरक्षित रखनेके लिये एवं इसके सम्बन्धियोंका पालन-पोषण करनेके लिये जो उचित नफा लेना है, वह भी उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उन्हींकी सेवा करना है। ऐसी भावनासे काम करनेपर कर्मयोगका साधन बड़ी सुगमतासे हो सकेगा।

'हरे राम' मन्त्रका जो रागरहित कीर्तनके रूपमें गाना है—यही उच्च स्वरसे जप करना है। इसमें आपने अर्थके विषयमें क्या पूछा, समझमें नहीं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आया। हरि, राम और कृष्ण—तीनों एक ही प्रभुके नाम हैं।

प्रभुकी स्मृतिसे ही हर समय सात्त्विक बुद्धि रह सकती है। सात्त्विकी बुद्धिके सम्बन्धमें एक लेख भाई हरिकृष्णका ३०वें वर्षके कल्याणके दूसरे अङ्कमें छपा है, उसे पढ़ सकते हैं।

दूसरे पत्रका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) 'कल्याण'-पढ़ना, हरे-रामका जप करना, गीता-पाठ करना बड़ा अच्छा है—इसमें दोष क्या हो सकता है। सुधारके लिये सब बातें प्रथम पत्रके उत्तरमें लिखी ही गयी हैं।

(२) अन्तःकरण-शुद्धिके लिये निम्नलिखित साधन संक्षेपमें हैं—

(क) न तो किसीका अहित (बुरा) करना, न चाहना और न किसीके अहितमें प्रसन्न ही होना।

(ख) निष्कामभाव अर्थात् किसीसे कुछ न चाहना, दूसरे किसीको भी दुःख-सुखका कारण नहीं मानना।

(ग) अपने स्वार्थका त्याग और कर्तव्यका पालन करना तथा दूसरोंके कर्तव्यकी ओर न देखना।

(घ) प्रभुका प्रेमपूर्वक स्मरण।

(ङ) किसीके दोषोंको न तो देखना, न सुनना, न कहना और न उनका चिन्तन ही करना।

(च) अपने दोषोंको सावधानीके साथ देखना, सुनना, उनसे दुखी होकर पुनः न करनेका दृढ़ संकल्प करके मिटा देना।

(छ) किसी प्रकारके भी गुणका अभिमान न करना, साधनको अपना जीवन मानना और भगवान्‌की कृपाका दर्शन करके उनके प्रेममें निमग्न होना।

(ज) अपने प्रतिकूल व्यवहार करनेवालेके अपराधको क्षमा कर देना अर्थात् उसका अपराध ही नहीं मानना, किसी प्रकार भी उसका बदला न चाहना एवं अपने द्वारा किसीके भी प्रतिकूल व्यवहार भूलसे भी हो जाय तो ज्ञान होते ही तत्काल उससे क्षमा माँग लेना। और भी बहुत-से उपाय हो सकते हैं। पत्रमें कहाँतक लिखा जा सकता है।

(३) प्रभुका आश्रय ले लेनेपर निरन्तर उनका स्मरण करनेपर वे स्वयं ही अज्ञानका नाश कर देते हैं तथा अन्तःकरणकी शुद्धिके उपर्युक्त सभी साधन अज्ञान-का नाश करनेवाले हैं।

(४) प्रभुकी कृपासे मिले हुए विवेकसे अपने दोषोंको देखकर उनको पुनः न करनेपर एवं दैवी-सम्पदाके महत्त्वको समझ लेने, मान लेने और सेवन करनेपर आसुरी सम्पदाका नाश और दैवी सम्पदाका संग्रह सहजमें हो सकता है।

(५) गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंके अध्ययनका वास्तविक फल उनका अर्थ और भाव समझकर उनके उपदेशानुसार अपना जीवन बनानेसे हो सकता है।

(६) भगवन्नामकी महिमापर विश्वास और नाममें या नामीमें श्रद्धा-प्रेम होनेपर अधिक जप और निरन्तर स्मरण हो सकता है।

(७) आसक्तिका ही दूसरा नाम राग है। यह अनुकूलतामें रहता है। इसके विपरीत जो प्रतिकूलतामें क्षोभ-वृत्ति होती है, उसे द्वेष कहते हैं। यह दुःखकी अनुभूतिके साथ रहता है। क्रोध और भय आदि इसके कार्य हैं।

(८) सत्त्वगुण बढ़नेपर रजोगुण और तमोगुण अपने आप क्षीण हो जाते हैं। अन्तःकरण शुद्ध होने-पर सत्त्वगुण बढ़ता है।

(९) प्रभुकी कृपासे मिले हुए विवेकसे संसारकी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वास्तविकताको जानकर कामको मिटाया जा सकता है।

(१०) श्रीरामकृष्ण परमहंस किस प्रकार जप करते थे, यह तो वे ही जानें। मैं कैसे बता सकता हूँ। उनकी जीवनी पढ़कर समझ सकें तो समझनेकी चेष्टा करें।

(११) राग-द्वेषका अभाव हो जानेपर जो अपने-परायेका भेद नष्ट होकर समभाव हो जाता है, उसे समत्व-बुद्धि कहते हैं। निष्कामभावका साधन ही इसको प्राप्त करनेका सरल उपाय है।

(१२) आपके लिये कौन-सा साधन उपयुक्त होगा—यह आप विचारपूर्वक समझनेकी चेष्टा करें। जिस साधनमें आपका अटल विश्वास हो, पूर्ण रुचि हो, जिसको आप प्राप्त परिस्थितिमें ही सुगमतासे कर सकें, जिसके करनेमें आप पराधीन न हों, दूसरोंका सहारा न लेना पड़े, वही साधन आपके लिये सर्वोत्तम है।

(७)

सादर हरिस्मरण। पत्र मिला। पहले पत्रमें भी आपने अपना पता नहीं लिखा था और इसमें भी नहीं लिखा, अतः उत्तर देनेमें कठिनाई है। हरेक पत्रका उत्तर 'कल्याण' में नहीं दिया जा सकता। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके निमित्त लिये हुए किसी नियमसे यदि माँ-बापको हार्दिक संताप या आर्थिक कष्ट हो तो उस नियमको बड़ी खुशीके साथ छोड़ देना चाहिये।

(२) गायत्री-मन्त्रका जप स्त्रियोंके लिये मना है।

(३) भागवतका अध्ययन स्त्रियाँ कर सकती हैं।

(४) प्रदोषका व्रत रजस्वला स्त्रियोंको छोड़ देना चाहिये। उसके अन्य नियमोंका पालन मनसे कर सकती हैं।

(५) आपत्तिकालमें स्त्री अपने चरित्रको सुरक्षित रखती हुई स्वावलम्बी बन सकती है।

(६) पुरुष विरक्त होकर घरसे निकल जाय तो स्त्रीको चाहिये कि साध्वी-धर्मके अनुसार सदाचारमें रहे, प्रभुमें अपना मन लगावे, सब प्रकारके विषय-भोगोंकी कामनाका त्याग कर दे और मन-इन्द्रियोंका संयम रखती हुई सबकी निर्दोष सेवा करे।

कामना

मैं जनप्रिय बन जाऊँ।
सबका मित्र, हितैषी सबका, सबका प्रिय बन जाऊँ॥
दुखियोंका दुखदर्द बँटा लूँ, उनका दुख घट जाए।
जिस उत्सवमें जाऊँ उसका सुख दुगना हो जाए॥
मेरा स्पर्श घावपर मलहम गुणकारी बन जाए।
मेरे दर्शनसे मित्रोंका हृदय-कमल खिल जाए॥
करूँ प्रार्थना सच्चे मनसे, दुख-दारिद्र्य मिटाऊँ।
अपने चारों ओर मैत्रीकी किरणें बिखराऊँ॥
सबका दुख मेरा हो जाए, मेरा सुख हो सबका।
सब मेरे अपने हो जाएँ, मैं हो जाऊँ सबका॥
हर जनमें देखूँ अपनेको, मैं सबमें खो जाऊँ।
सबके सुखमें सुखी रहूँ मैं, सबका प्रिय बन जाऊँ॥

—मधुसूदन वाजपेयी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वैष्णव-सदाचार

(संख्या ४ पृष्ठ ८५८ से आगे)

बृहन्नारदीयपुराणमें आता है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते ।
सत्सङ्गः प्राप्यते पुम्भिः सुकृतैः पूर्वसंचितैः ॥

'भगवद्भक्तके सङ्गसे भक्ति उत्पन्न होती है और पुरुषको पूर्वसंचित पुण्योंके फलस्वरूपमें सत्सङ्गकी प्राप्ति होती है ।'

अतः श्रीभगवद्भक्तजनानां संगतिः सदा ।
कार्या सर्वैः प्रयत्नेन द्वौ लोकौ विजिगीषुभिः ॥
(श्रीहरिभक्तिविलास)

'अतएव जो लोग इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें श्रीभगवान्‌के भक्तोंकी सङ्गति सदा सम्पूर्ण प्रयत्नसे करनी चाहिये ।'

असत्सङ्ग-त्याग

शास्त्रका वचन है—

भगवद्भक्तिहीना ये मुख्यासंतस्त एव हि ।
तेषां निष्ठा शुभा क्वापि न स्यात् सच्चरितैरपि ॥

'जो लोग भगवद्भक्तिसे विहीन हैं, वे ही मुख्यतः असंत हैं; वे यदि सच्चरित भी हों तो भी उनकी निष्ठा कभी शुभ नहीं हो सकती ।'

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा ।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद् याति संक्षयम् ॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु योषित्क्रीडामृगेषु च ।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ॥

'जिनका सङ्ग करनेसे सत्य, शौच, दया, मौन (मननशीलता), सदसद्विवेक, लज्जा, श्री, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्यका नाश होता है, उन अशान्त, मूढ़, स्त्री-रति-लोलुप, लम्पट, शोचनीय, देहाभिमानी असाधु पुरुषोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये ।'

श्रीभगवन्नाम

सर्वार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
यथाभिरोचते नाम तत् सर्वार्थेषु कीर्तयेत् ॥
सर्वार्थसिद्धिमाप्नोति नाम्नामेकार्थता यतः ।
सर्वाण्येतानि नामानि परस्य ब्रह्मणो हरेः ॥
(विष्णुधर्मोत्तर०)

'सब प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि करनेमें समर्थ भगवान् देवदेव चक्रपाणिका जो भी नाम रुचता हो, सभी कार्योंके लिये उसका कीर्तन करना आवश्यक है । परब्रह्म श्रीहरिके सभी नाम एकार्थबोधक हैं; अतः सभी नामोंसे सम्पूर्ण अर्थोंकी सिद्धि होती है ।' आदिपुराणमें लिखा है—

नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः ।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः ॥

'नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम आराध्यदेव है और नाम ही परम गुरु है ।'

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितैः ।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥
(स्कन्दपुराण)

'प्रलयकी अग्नि जैसे समस्त विश्वको भस्म कर देती है, वैसे ही भक्तिपूर्वक या बिना भक्तिके किया हुआ गोविन्द नामका उच्चारण समस्त पापोंको भस्म कर देता है ।'

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
(श्रीमद्भागवत)

'पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसी-दिल्लगीसे हो, गीतालापकी पूर्तिके लिये हो या अवज्ञापूर्वक हो, भगवान्‌का नामोच्चारण करते ही पापोंका सर्वथा नाश हो जाता है ।'

नारायणमिति व्याजादुच्चार्य कलुषाश्रयः ।
अजामिलोऽप्यगाद् धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'घोर पापी अजामिल भी जब पुत्रके बहाने नारायणका नाम लेकर भगवान्‌के धामको पहुँच गया, तब श्रद्धापूर्वक नाम लेनेका फल तो कौन बता सकता है ।'

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
(बृहन्नारदीयपुराण)

'कलियुगमें केवल हरिनाम ही सार है, हरिनाम ही सार है, हरिनाम ही सार है; इस हरिनामको छोड़कर और कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है ।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥
(बृहद्विष्णुपुराण)

'पाप हरण करनेकी हरिनाममें जितनी शक्ति है, उतना पाप पापीजन कर ही नहीं सकते ।' लघुभागवतामृतका वचन है—

वर्तमानं तु यत्पापं यद्भूतं यद् भविष्यति ।
तत् सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनात् ॥

'वर्तमान, भूत और भविष्यकी सारी पापराशि श्रीगोविन्दके नामसंकीर्तनरूपी अग्निके संस्पर्शसे शीघ्र ही भस्मीभूत हो जाती है ।'

सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सर्वदुःखक्षयकरं हरिनामानुकीर्तनम् ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'श्रीहरिनामकीर्तन समस्त पापोंका नाश करता है, सारे उपद्रवोंको नष्ट कर देता है और सारे दुःखोंका क्षय कर देता है ।'

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥
(स्कन्द० प्रभासखण्ड)

'हे भृगुवर ! समस्त मधुर पदार्थोंमें अत्यन्त मधुर, सब मङ्गलोंके मङ्गल, समस्त वेद-शास्त्ररूपी लताका सुन्दर फल, चैतन्यस्वरूप, कृष्णनाम जिसने श्रद्धापूर्वक या अवज्ञासे ही एक बार भी कीर्तन कर लिया, उस मनुष्यका चाहे वह किसी भी वर्ण या जातिका क्यों न हो—उद्धार हो गया ।' विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है—

जितं तेन जितं तेन जितं तेनेति निश्चितम् ।
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥

'जिसकी जिह्वापर 'हरि' ये दो अक्षर विराजमान रहते हैं, उसने निश्चय ही भगवान्‌को वशीभूत कर लिया, वशीभूत कर लिया, वशीभूत कर लिया ।'

लघुभागवतामृतमें लिखा है—

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् ।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे ॥

'हे राजन् ! वे मनुष्य निश्चयपूर्वक भाग्यशाली हैं और कृतार्थ हो गये हैं, जो कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम स्मरण करते हैं और दूसरोंसे स्मरण कराते हैं ।'

तथा—

जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
(नारदपुराण)

'जिसकी जीभके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर वास करते हैं, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधाम वैकुण्ठको प्राप्त होता है ।'

अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज ।
हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्तते ॥
(नारदपुराण)

'यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि श्रीहरिनामके रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्युरूप संसारमें चक्कर काटते हैं ।'

हरिरिति सहसा ये संगृणन्तिच्छलेन
जननिजठरमार्गात्ते विमुक्ता हि मर्त्याः ।
मम पटलिपिं ते नो विशन्ति प्रवीणा
दिविचरवरसंघैस्ते नमस्या भवन्ति ॥

यमराज कहते हैं—'जो मनुष्य किसी दूसरे बहानेसे भी अनायास 'हरि' नामका उच्चारण कर लेते हैं, वे माताके गर्भसे छुटकारा पा जाते हैं । वे चतुर मनुष्य मेरे पटके लेखमें (मेरे यहाँ रहनेवालोंकी सूचीमें) नहीं आते और देवताओंके समुदाय भी उनको नमस्कार करते हैं ।'

स्कन्दपुराणमें आया है—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥

'जो कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !' कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार मैं नरकसे निकाल लाता हूँ ।'

जीवितं जन्म सफलं मुखं तस्यैव सार्थकम् ।
सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति ॥

'उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा 'कृष्ण-कृष्ण' का कीर्तन करती है ।'

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥

यमराज कहते हैं—'जो मनुष्य गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरि, मुरारि, शम्भु, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन और वासुदेव इत्यादि नामोंका सदा उच्चारण करते रहते हैं, उनको दूरसे ही त्याग देना।'

गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥

'जो लोग सदा गङ्गाधर, अन्धकरिपु, हर, नीलकण्ठ, वैकुण्ठ, कैटभारि, कमठ (कच्छप), पद्मपाणि, भूतेश, खण्डपरशु, मृड, चण्डिकेश आदि नामोंका जप करते रहते हैं, वे तुम्हारे लिये सर्वथा त्याज्य हैं।'

विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥

'विष्णु, नृसिंह, मधुसूदन, चक्रपाणि, गौरीपति, गिरिश, शङ्कर, चन्द्रचूड, नारायण, असुरनिकन्दन, शार्ङ्गपाणि इत्यादि नामोंका जो लोग सदा कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें भी दूरसे ही त्याग देना उचित है।'

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम् ॥

'जैसे आगकी चिनगारी भूलसे भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होठोंसे श्रीहरिनामका स्पर्श होते ही वह समस्त पापोंको हर लेता है।'

नामापराध और उसका निवारण

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते
यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगर्हाम्।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः ॥
गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं
तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम्।
नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि-
र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥
धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्व-
शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः।
अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥
श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः।
अहंममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥
जाते नामापराधेऽपि प्रमादेन कथंचन।
सदा संकीर्तयेन्नाम तदेकशरणो भवेत् ॥
(पद्मपुराण)

(१) साधुओंकी निन्दा करनेसे नामका गुरुतर अपराध होता है; क्योंकि साधुओंके द्वारा प्रकटित नाम उन्हीं साधुओं की निन्दा कैसे सह सकते हैं। (२) इस लोकमें जो मनुष्य शिव और विष्णुके नाम-गुण आदिमें बुद्धिसे भिन्नता देखता है, वह निश्चय ही हरिनामके सामने अपराधी है। (३) जो गुरुकी अवज्ञा करता है। (४) वेदादि शास्त्रोंकी निन्दा करता है, (५) हरिनाममें अर्थवादकी कल्पना करता है, अर्थात् नामकी महिमाको सूचित करनेवाला अर्थ त्यागकर व्यर्थ ही अन्य प्रकारके अर्थकी कल्पना करता है (अथवा यह समझता है कि हरिनामके माहात्म्यका वर्णन स्तुतिवाद मात्र है, अतएव मिथ्या है), (६) नामके बलसे जो पापमें प्रबल होता है, अर्थात् यह समझकर पापमें रत रहता है कि नाम जपनेसे ये पाप दूर हो जायँगे, उसको चिरकालतक यम-यातना भोगनी पड़ती है। (७) जो धर्म, व्रत, दान, होम आदि शुभकर्मोंकी नामसे तुलना करता है। (८) श्रद्धा-विहीन तथा श्रवणविमुख व्यक्तिको उपदेश देता है, (९) जो नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसमें श्रद्धा-भक्ति नहीं रखता तथा (१०) जो 'मैं और मेरा' के चक्करमें—विषयभोगोंमें आसक्त रहते हैं—ये सभी नामापराधी हैं। किसी प्रकारसे भी प्रमादवश नामापराध हो जानेपर एकमात्र भगवन्नाम-संकीर्तनके ही शरणापन्न होना ठीक है। नामापराध-का निवारण नाम-जप-कीर्तनसे ही होता है।

श्रीभागवत-कथा

अहो हरिकथा लोके पापघ्नी पुण्यदायिनी।
शृण्वतां ब्रुवतां चैव तद्भावानां विशेषतः ॥
(बृहन्नारदीयपुराण)

'अहा ! हरि-कथा इस संसारमें पापोंका नाश करनेवाली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली है। हरिकथाके भावोंको सुनने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

और कहनेका और भी विशेष फल होता है।' अन्यत्र भी कहा गया है—

तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः॥

'जहाँ भगवान् अच्युत (श्रीकृष्ण)की ललित कथा होती है, वहीं गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, सरस्वती आदि समस्त पवित्र तीर्थ निवास करते हैं।'

स्कन्दपुराणमें श्रीभगवान्‌का वचन है—

मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम्।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम्॥

'जो मेरी कथा बाँचता है, मेरी कथा श्रवण करनेमें लीन रहता है तथा मेरी कथा सुनकर जिसका चित्त प्रसन्न होता है, ऐसे पुरुषको मैं कभी त्यागता नहीं।' साथ ही हरिकथा-से विमुख होनेमें दोष भी पर्याप्त होता है—

न श्रृण्वन्ति न हृष्यन्ति वैष्णवीं प्राप्य ये कथाम्।
धनमायुर्यशो धर्मः संतानश्चैव नश्यति॥

(स्कन्दपुराण)

'जो मनुष्य श्रीविष्णुकी कथा होते हुए देखकर भी न सुनते हैं और न प्रसन्न होते हैं, उनका धन, आयु, यश, धर्म और संतति नष्ट हो जाती है।'

यत्र यत्र महीपाल वैष्णवी वर्तते कथा।
तत्र तत्र हरिर्याति गौर्यथा सुतवत्सला॥

(स्कन्दपुराण)

'महीपाल! जैसे संतानवत्सला गौ बछड़ेके पीछे-पीछे दौड़ती है, वैसे ही श्रीहरि भी, जहाँ हरिकथा होती है, वहाँ दौड़े जाते हैं।'

नित्यं कृष्णकथा यस्य प्राणादपि गरीयसी।
न तस्य दुर्लभं किंचिदिहलोके परत्र च॥

(स्कन्दपुराण, द्वारका-माहात्म्य)

'श्रीकृष्ण-कथा जिसको नित्य प्राणोंसे भी अधिक प्रिय लगती है, उसके लिये इस लोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।'

श्रीभगवद्धर्म-कथा-जिज्ञासा

वैष्णवे वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तम।
ससागरमहीदाने यत् फलं लभतेऽधिकम्॥

(स्कन्दपुराण)

'हे विप्रवर! जो वैष्णवको वैष्णवधर्मकी शिक्षा देता है, उसको समुद्रसहित पृथ्वीका दान करनेसे जो फल होता है, उसकी अपेक्षा भी अधिक फल होता है।' इसके विपरीत—

नाख्याति वैष्णवं धर्मं विष्णुभक्तस्य पृच्छतः।
कलौ भागवतो भूत्वा पुण्यं याति शताब्दिकम्॥

(श्रीहरिभक्तिविलास)

'कलियुगमें यदि कोई विष्णुभक्त वैष्णव-धर्म-विषयक जिज्ञासा करता है और भगवद्भक्त होकर भी जो उसकी उपेक्षा करके धर्मोपदेश नहीं करता, उस पुरुषके सौ वर्षोंका अर्जित किया हुआ पुण्य क्षीण हो जाता है।'

नृत्य-गीत

गीतं वाद्यं च नृत्यं च नाट्यं विष्णुकथां मुने।
यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः॥

(स्कन्दपुराण)

'हे मुने! जो विष्णुकथाका अवलम्बन करके गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय करता है, वह पुण्यात्मा है और त्रिलोकीसे ऊपर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।'

चातुर्मास्य-व्रत

सनत्कुमार-संहिताका वचन है—

एकादश्यां तु गृह्णीयात् संक्रान्तौ कर्कटस्य तु।
आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्योदितं व्रतम्॥

'मनुष्यको भक्तिपूर्वक आषाढ़ शुक्ला एकादशी, पूर्णिमा या कर्क-संक्रान्तिके दिन नियमपूर्वक संकल्प करके चातुर्मास्य-व्रत ग्रहण करना चाहिये।'

संकल्पके समय यह प्रार्थना करे—

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात् तव केशव॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि वा भवेत्।
तदा भवतु सम्पूर्णं प्रसादात् ते जनार्दन॥

'हे देव! हे केशव! तुम्हारे सामने यह चातुर्मास्य-व्रत मैंने ग्रहण किया है। तुम्हारी कृपासे यह निर्विघ्न पूरा हो। यदि इस व्रतके पूर्ण होनेसे पहले ही मेरी मृत्यु हो जाय तो हे जनार्दन! तुम्हारी कृपासे यह पूर्णताको प्राप्त हो।'

इस व्रतमें जप-होम, नाम-संकीर्तन, हरि-कथा-श्रवण-पठन, हरि-सेवा आदि अनुष्ठान नियमपूर्वक करने चाहिये। व्रतकालमें विलासकी वस्तुओंका सेवन नहीं करना चाहिये और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अभक्ष्य-भोजन करना चाहिये। भूमिपर सोना चाहिये। इसके सिवा श्रावणमें शाक, भाद्रपदमें दधि और आश्विनमें दुग्ध वर्जित है।

अखिलकर्मार्पण

साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ।
तत्सर्वं भगवन् विष्णो गृहाणाराधनं परम् ॥

'हे भगवन् ! हे विष्णो ! मैंने सत् या असत् जो कुछ कर्म किया है, उसको मेरी परम आराधनाके रूपमें स्वीकार कीजिये—इस प्रकार प्रतिदिन अखिल कर्मोंको श्रीभगवान्‌को अर्पण करे।'

श्रीहरिनाम-महामन्त्र

श्रीराधातन्त्रमें लिखा है—

दशवर्षे तु सम्प्राप्ते द्वादशाभ्यन्तरे सुत ।
शृणुयाद्धरिनामानि षोडशानि पृथक् पृथक् ॥
हरिनाम बिना पुत्र कर्णशुद्धिर्न जायते ।
द्वादशाभ्यन्तरे श्रुत्वा कर्णशुद्धिमवाप्नुयात् ॥

'हे वत्स ! दस वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर द्वादशवर्षकी आयुके भीतर पृथक्-पृथक् सोलह नामवाले हरिनाम-महामन्त्रको श्रवण करे। हे पुत्र ! हरिनाम श्रवण किये बिना कानोंकी शुद्धि नहीं होती, अतएव द्वादश वर्षकी अवस्थाके भीतर हरिनाम महामन्त्रको सुनकर कर्ण-शुद्धि प्राप्त करे। वह महामन्त्र इस प्रकार है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

कलियुगमें यही महामन्त्र तारकब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध है। इस महामन्त्रके ग्रहण करनेकी दो विधियाँ हैं—(१) जपके द्वारा तथा (२) कीर्तनके द्वारा। जपके द्वारा नाम ग्रहण करनेमें संख्या रखना आवश्यक होता है और उसमें प्रतिदिनकी जप-संख्याका एक नियम-पालन करना पड़ता है। जपके लिये मालाका होना भी आवश्यक है। कीर्तनके लिये नियमका कोई बन्धन नहीं है।

वैष्णवमें जाति-बुद्धि-दोष

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ।
वीक्षते जातिसामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥
(श्रीहरिभक्तिविलास)

भगवद्भक्त शूद्र हो, निषाद हो अथवा चाण्डाल ही क्यों न हो, उसको भागवतके रूपमें ही देखना उचित है। उसको जातिसामान्यके रूपमें देखकर (जो उसका) अपमान करता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।'

अष्टादशाक्षर-मन्त्रराज-माहात्म्य

गोपालतापनीय श्रुतिमें श्रीसनकादि मुनि श्रीब्रह्माजीसे पूछते हैं—(१) सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है ? (२) मृत्यु किससे भय खाती है ? (३) किसको जान लेनेपर सब जाना जाता है ? (४) किससे यह संसार सृष्ट हुआ है ? श्रीब्रह्माजी उत्तरमें कहते हैं—(१) श्रीकृष्ण ही परम देवता हैं, (२) मृत्यु गोविन्दसे भय खाती है, (३) गोपीजनवल्लभको जान लेनेपर सब जाना जाता है, (४) स्वाहाके द्वारा संसार सृष्ट होता है।

मुनियोंने फिर पूछा—(१) कृष्ण कौन हैं ? (२) गोपीजनवल्लभ कौन हैं ? और (३) स्वाहा कौन है ?

श्रीब्रह्माजी बोले—(१) जो पापको कर्षण करते हैं वे ही कृष्ण हैं; (२) जो स्वर्ग,भूमि और वेदमें विदित हैं तथा जो इन सबको जानते हैं, वे गोविन्द हैं। (३) 'गोपीजन' शब्दका अर्थ है—सम्यक् विद्या या भगवद्विषयक ज्ञान, उसके वल्लभ या प्रेरक अर्थात् जिनकी कृपासे वह ज्ञान प्राप्त होता है, वे ही गोपीजनवल्लभ हैं। और (४) स्वाहा शब्दका अर्थ है माया। यह सब परब्रह्म है। जो इनका ध्यान करता है, कीर्तनादिद्वारा इनका आस्वादन करता है, भजन करता है, वह मुक्त हो जाता है। मुनियोंने फिर पूछा—(१) इनका रूप क्या है ? (२) इनका आस्वादन कैसा है ! तथा (३) इनका भजन किस प्रकार होता है ?

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—श्रीकृष्ण गोपवेषधारी हैं, नव-जलधर-श्याम हैं, नित्य-किशोर हैं, कल्पवृक्षके मूलमें अवस्थित हैं। श्रीकृष्णके प्रति भक्ति (भजन) का अर्थ है—इस लोक और परलोककी उपाधि अर्थात् भोगाभिलाषका परित्याग करके श्रीकृष्णमें ही मनको लगाना। ब्राह्मण श्रीकृष्णकी नाना प्रकारसे पूजा करते हैं और नित्यस्वरूप गोविन्दका ध्यान अनेक प्रकारसे करते हैं। गोपीजनवल्लभ ही सारे भुवनोंका पालन करते हैं, वे स्वाहाका आश्रय लेकर जगत्‌की सृष्टि करते हैं।

जिस प्रकार वायु जगत्‌में प्रवेश करके प्रत्येक शरीरमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच रूपोंमें विभक्त हो जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण एक होकर भी जगत्‌के

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हितार्थ अठारह अक्षरोंके इन पाँच पदोंमें विभक्त होकर (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) इस अष्टादशाक्षर मन्त्ररूपमें विराजते हैं। जो पुरुष श्रीगोविन्दके इस मन्त्रको प्रणवसे पुटित करके जपते हैं, गोविन्द उनको अपनी गोपालमूर्तिके दर्शन देते हैं।

विष्णुसहस्रनाम-माहात्म्य

स्कन्दपुराणमें लिखा है—

श्लोकेनैकेन देवर्षे सहस्रनामकस्य यत्।
पठितेन फलं प्रोक्तं न तत् क्रतुशतैरपि॥
उक्त्वा नामसहस्रं तु नान्यो धर्मोऽस्ति कश्चन।
कलौ प्राप्ते गुडाकेश सत्यमेतन्मयेरितम्॥

'हे नारदजी! श्रीविष्णुसहस्रनामके एक श्लोकका भी पाठ करनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वह फल सैकड़ों यज्ञोंके द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। और कलियुगमें सहस्रनामका पाठ कर लेनेपर तो कोई अन्य धर्म उसके समान फलप्रद नहीं रह जाता। हे गुडाकेश! यह मैंने तुमसे सत्य ही कहा है।' अतएव वैष्णवके लिये प्रतिदिन सहस्रनामका पाठ करना अत्यावश्यक है।

श्रीमद्भगवद्गीता-माहात्म्य

महाभारत तथा स्कन्दपुराणका वचन है—

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयी यतः।
सर्वधर्ममयी यस्मात् तस्मादेतां समभ्यसेत्॥

अर्थात् गीता स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्रीकृष्णके मुखकमलसे निःसृत हुई है, इसलिये गीताका ही सुचारुरूपसे पाठ करनेकी आवश्यकता है, नाना प्रकारके अन्यान्य शास्त्रोंका प्रयोजन ही क्या है? गीता सर्वशास्त्रमयी है, सर्वदेवमयी है तथा सर्वधर्ममयी है, अतएव गीताका ही सम्यक् अभ्यास करे।

श्रीमद्भागवत माहात्म्य

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने।
अष्टादशपुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः॥
(स्कन्दपुराण)

'हे मुने! जो मनुष्य प्रतिदिन यत्नपूर्वक भागवतके एक श्लोकका भी पाठ करता है, उसको अष्टादश पुराणोंके पाठका फल प्राप्त होता है।'

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥
सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥

'भागवत-शास्त्र समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला वेदरूपी कल्पवृक्षका मधुर फल है, जो शुकमुनिरूप तोतेके मुखसे निकलकर भूमण्डलपर अखण्डरूपसे गिरा हुआ है। अतएव हे रसिकजन! हे रसविशेषकी भावनामें प्रवीणजन! अमृतद्रवयुक्त इस रसमय फलका बारंबार आस्वादन करो।'

'यह श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण वेदान्तका सार है, जो मनुष्य इसके रसामृतसे परितृप्त हैं, उनकी अन्यत्र कहीं भी रति नहीं होती।' तथा—

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥

'इस श्रीमद्भागवतको सुननेपर परमपुरुष श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है, जो मनुष्यके शोक, मोह और भयका नाश कर देती है।'

वैष्णवशास्त्र-माहात्म्य

वैष्णवानि च शास्त्राणि ये शृण्वन्ति पठन्ति च।
धन्यास्ते मानवा लोके तेषां कृष्णः प्रसीदति॥
देवतानामृषीणां च योगिनामपि दुर्लभम्।
विप्रेन्द्र वैष्णवं शास्त्रं मनुष्याणां च का कथा॥
(स्कन्दपुराण)

'जो लोग वैष्णव शास्त्रोंका श्रवण तथा पाठ करते हैं वे लोग इस संसारमें धन्य हैं। उनके ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। हे विप्रेन्द्र! वैष्णवशास्त्र देवताओं, ऋषियों और योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, मनुष्योंकी तो बात ही क्या?' अतएव—

सर्वस्वेनापि विप्रेन्द्र कर्त्तव्यः शास्त्रसंग्रहः।
वैष्णवैस्तु महाभक्त्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः॥

'हे नारदजी! वैष्णवोंको भक्तिपूर्वक अपना सर्वस्व

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लगाकर भी चक्रपाणि श्रीकृष्णकी संतुष्टिके लिये वैष्णव-शास्त्रों-का संग्रह करना चाहिये ।'

श्रीभगवत्-शास्त्रवक्ताका माहात्म्य

स्कन्दपुराणमें श्रीभगवान् कहते हैं—

मम शास्त्रप्रवक्तारं मम शास्त्रानुचिन्तकम् ।
चिन्तयामि न संदेहो नरं तं चात्मवत् सदा ॥

'वैष्णवशास्त्रके प्रवक्ता तथा वैष्णवशास्त्रका चिन्तन करनेवाले पुरुषको मैं सदा आत्मवत् समझता हूँ ।' अतएव—

भगवद्धर्मवक्तारं भगवच्छास्त्रवाचकम् ।
वैष्णवं गुरुवद् भक्त्या पूजयेज्ज्ञानदायकम् ॥

(श्रीहरिभक्तिविलास)

'जो वैष्णवधर्मके व्याख्याता हैं तथा जो वैष्णवशास्त्रके वक्ता हैं, उन ज्ञान प्रदान करनेवाले वैष्णव भक्तको गुरुके समान भक्तिभावसे पूजना चाहिये ।'

श्रीमन्दिर-निर्माण-माहात्म्य

हयशीर्ष-पञ्चरात्रमें लिखा है—

देवागारं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत् ।
तस्य कायगतं पापं तदह्ना विप्र नश्यति ॥
कृते तु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु ॥

'हे विप्र ! जो मनमें यह चिन्तनमात्र करता है कि मैं देवालय बनवाऊँगा, उसके शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाते हैं और फिर विधिपूर्वक भगवन्मन्दिरका प्रासाद बनवानेपर जो फल होगा, उसकी तो बात ही क्या है ।'

भवेद् बहुविधं तच्च वेश्म तत्र स्वशक्तितः ।
शास्त्रानुसारतः कुर्याद्देवं वासोचितं प्रभोः ॥

(श्रीहरिभक्तिविलास)

'प्रासाद, मण्डप आदि भेदसे मन्दिर नाना प्रकारके होते हैं; अतएव अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार यथाशास्त्र प्रभुके निवासके योग्य मन्दिर बनवाना चाहिये ।'

जीर्ण-मन्दिर-संस्कार-माहात्म्य

श्रीविष्णुरहस्यमें लिखा है—

पतितस्य च यः कर्त्ता पतमानस्य रक्षिता ।
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुलोकभाक् ॥

'गिरे हुए देवालयका जो पुनः निर्माण करता है तथा गिरते हुए देवालयकी मरम्मत कराते हुए जो उसकी रक्षा करता है, वह मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है ।'

शयन-विधि

ततोऽनुज्ञां प्रभोः प्रार्थ्य दण्डवत्तं प्रणम्य च ।
सायं भुक्त्वा यथान्यायं सुखं सुप्यात् प्रभुं स्मरन् ॥

(श्रीहरिभक्तिविलास)

'निशाकालीन सेवा-पूजा समाप्त करके, प्रभुसे अनुमतिकी प्रार्थना करके और उनको दण्डवत्-प्रणाम करके, यथायोग्य भोजन करके प्रभुको स्मरण करते हुए शयन करे ।' रक्षामन्त्र—

सबाह्याभ्यन्तरं देहमापादतलमस्तकम् ।
सर्वात्मा सर्वशक्तिश्च पातु मां गरुडध्वजः ॥
इति रक्षां पुरस्कृत्य स्वपेद् विष्णुमनुस्मरन् ॥

सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान्, गरुडध्वज भगवान् विष्णु आपादतलमस्तक मेरे समस्त शरीरकी बाहर और भीतर रक्षा करें—इस रक्षामन्त्रको पढ़कर विष्णुको स्मरण करता हुआ शयन करे और दुःस्वप्नके निवारणके लिये इस मन्त्रका पाठ करे—

रामं स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।
शयने यः स्मरेन्नित्यं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति ॥

'शयन करते समय जो राम, स्कन्द, हनूमान्, गरुड़ एवं भीमका स्मरण करता है, उसके दुःस्वप्नका नाश हो जाता है ।'

शरणागत-लक्षण

स्कन्दपुराणका वचन है—

गोविन्दं परमानन्दं मुकुन्दं मधुसूदनम् ।
त्यक्त्वान्यं वै न जानामि न भजामि स्मरामि न ॥
न नमामि न च स्तौमि न पश्यामि स्वचक्षुषा ।
न स्पृहामि न गायामि न वा यामि हरिं विना ॥

(स्कन्दपुराण)

'परमानन्दमय मुक्तिदाता मधुसूदन श्रीगोविन्दके सिवा मैं किसी दूसरेको नहीं जानता, न भजन करता, न स्मरण करता, न नमस्कार करता, न स्तुति करता; और न अपनी आँखों-से देखता हूँ । हरिके बिना मैं न किसीकी स्पृहा करता हूँ, न गुणगान करता हूँ; न किसीके निकट जाता हूँ ।' शरणापन्न भक्तको श्रीगोविन्द सर्वमय, सर्वदेवमय दीखते हैं ।

चार धाम

(१) बदरिकाश्रम, (२) द्वारका, (३) पुरी और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

(४) सेतुबन्ध रामेश्वर—इन चारों धामोंके दर्शन और परिक्रमा करना वैष्णवोंका कर्तव्य है।

गोपूजन और गोग्रास

गावः प्रदक्षिणीकार्या वन्दनीया हि नित्यशः।
मङ्गलायतनं दिव्याः सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा॥
अप्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च।
यद्गोमयेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमो ह्यधिकं ततः॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च।
गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्॥
गावो मे चाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे हृदये चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

'गौओंकी परिक्रमा करनी चाहिये। वे सदा सबके लिये वन्दनीय हैं। गौएँ मङ्गलका स्थान हैं, दिव्य हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन्हें दिव्य गुणोंसे विभूषित बनाया है। जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर भी शुद्ध होते हैं, उन गौओंसे बढ़कर अन्य किसको बतायें। गौओंका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र हैं और सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करती हैं। गायें मेरे आगे रहें, गायें मेरे पीछे रहें, गायें मेरे हृदयमें रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ।'

जो प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय नियमपरायण एवं पवित्र होकर 'गावो मे चाग्रतो नित्यं' इत्यादि श्लोकका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और स्वर्गलोकमें जाता है।

गोग्रासका मन्त्र

सौरभेयी जगत्पूज्या नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
सर्वदेवमयी ग्रासं मया दत्तं प्रतीच्छताम्॥

'सुरभिकी पुत्री गोजाति सम्पूर्ण जगत्के लिये पूज्य है, वह सदा विष्णुपदमें स्थित है और सर्वदेवमयी है। मेरे दिये हुए इस ग्रासको गोमाता ग्रहण करें।'

गोपाष्टमी-व्रत

कार्तिक शुक्ला ८ के दिन गोपाष्टमीका व्रत करे। इसमें गौओंकी पूजा करना, गोग्रास देना, गौओंकी परिक्रमा करना, गौओंकी रक्षा करना और गोदान करना चाहिये। श्रीकृष्ण गो-सेवासे बहुत प्रसन्न होते हैं।

श्रीगोवर्द्धन-पूजा और अन्नकूट-महोत्सव

श्रीकृष्णदासवर्योऽयं श्रीगोवर्द्धनभूधरः।
शुक्लप्रतिपदि प्रातः कार्तिकेऽर्च्योऽत्र वैष्णवैः॥
(स्कन्दपुराण)

'यह गिरि गोवर्द्धन श्रीकृष्णके दासोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतएव वैष्णवलोग कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके प्रातःकाल इनकी पूजा करें।'

गोवर्द्धन-पूजा-मन्त्र

गोवर्द्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥
(पद्मपुराण)

'हे गोवर्द्धन गिरि! हे गोकुलका त्राण करनेवाले! तुमको श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे ऊपर उठाया था! तुम हमको कोटि-कोटि गौएँ प्रदान करो।'

श्रीकृष्णाय नमः

भक्ति बिनु तन-मन मैलो

हरिकी भक्ति बिनु तन मन मैलो।
जैसें बिनु लाद्यो बिनु जोत्यौ
गायनि माँझ फिरत खल बैलौ॥
आपु न जानत कही न मानत,
अजहूँ गुरुहिन करत असैलो।
अपुन बिगारि बिगारत औरनि,
ज्यौं जल-नायैं काचौ धैलौ॥
जुग-जुग जनम-जनम याही तैं
अजहुँ न भरचौ बिषै कौ थैलौ।
'व्यास' वचन माने बिनु जानैं,
नरक परैगौ ऐलौ पैलौ॥

—श्रीव्यासजी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

महर्षि वशिष्ठकी गोदमें श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीऋषिकेशजी त्रिवेदी)

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई ।
जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई ॥
बाल बिनोद करत रघुराई ।
बिचरत अजिर जननि सुखदाई ॥

अभी भगवान् श्रीरामजी छोटे ही हैं । घरसे बाहर नहीं निकलते हैं । सारी बालक्रीडाएँ राजप्रासादके अंदर ही करते हैं, जिनको देख-देखकर माताएँ प्रसन्न होती रहती हैं । जिन लोगोंने भगवान्के दर्शन किये हैं, वे उनकी चर्चा अयोध्यानगरीमें जहाँ-तहाँ बैठकर करते हैं और कहते हैं कि ऐसा अनुपम बालक कभी किसीको देखनेको नहीं मिला है । माता कौसल्या कहती हैं कि 'अभी बालक छोटा है, महलसे बाहर कैसे ले जाया जाय । जब बड़ा होगा एवं शुभ मुहूर्त होगा तभी बालकको भवनसे बाहर निकाला जायगा ।' अयोध्याके नर-नारी, जो राजभवनमें जाने योग्य नहीं हैं, सभी लालायित हैं कि उस विश्वविमोहन मुनिमन-मोहन विश्वाराम रामका मुख कब देखनेको मिलेगा । जो—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥

स्वयं गुरु वशिष्ठजी भी उस मनमोहन रामको देखने-की अत्यन्त उत्कण्ठा रखते हैं । वे जानते हैं कि आज ब्रह्माजी देख गये । कल श्रीभूतभावन कैलासपति शङ्कर-जी कागभुशुण्डिके साथ ज्योतिषीका रूप धारण कर अखिलभुवनाराम श्रीरामजीको गोदमें लेकर खिला गये । शङ्करजीने तो ऐसी चाल चली कि जिसके कारण रंग-महलसे महारानीजीकी ओरसे निमन्त्रण भेजा गया कि 'आओ और बालकका हाथ देखो ।' इस विनोदको श्रीगोस्वामीजीने इस प्रकार व्यक्त किया है—

अवध आजु आगमी एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन्ह परिचौ पायो ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो ।
सँग सिसु सिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥
पायँ पखारि, पूजि दियो आसन, असन बसन पहिरायो ।
मेले चरन चारु चार्‍यो सुत माथे हाथ दिवायो ॥
नख सिख बाल बिलोकि बिप्र तनु पुलक, नयन जल छायो ।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो ॥
जनम प्रसंग कह्‍यो कौसिक मिस, सीय स्वयंबर गायो ।
राम, भरत, रिपुदवन, लखन को जय सुख सुजस सुनायो ॥
'तुलसिदास' रनिवास रहस बस, भयो सब को मन भायो ।
सनमान्यौ महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो ॥
(गीतावली, बालकाण्ड)

भगवान्की इस रूप-माधुरीको देखकर कैलासवासी भगवान् शङ्कर कैलासको छोड़कर अवधकी गलियोंमें विचरने लगे; क्योंकि नित्य तो बुलावा कठिन-सा था । एक दिन कहीं दाँव लग गया । नित्य-नित्य जानेसे इस चोरीका कहीं भेद न खुल जाय, मनमें यह शंका भी बनी रहती थी, इस कारण यह प्रतीक्षा थी कि कभी भी राजमहलसे बाहर निकलेंगे तो अवश्य दर्शन होगा । अब तो—

परमानंद प्रेम सुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥

कागभुशुण्डिजीने भी अपने निवासस्थान नीलगिरि पर्वतको त्यागकर पाँच वर्षके लिये अवधहीमें रहनेका संकल्प कर लिया 'बरष पाँच तहँ रहेउँ लुभाई' और अपनी निष्ठामें वे शङ्करजीसे भी आगे निकले । अब तो काग बनकर दशरथ-अजिर-विहारीकी आँगनकी नित-नयी क्रीडाएँ देखते थे, जिसके लिये स्वयं भुशुण्डिजी कहते हैं—

पीत झीनि झगुली तन सोही ।
किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी ।
नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा ।
बरनत मोहि होति अति व्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं ।
चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ॥
आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥
(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

महर्षि यह सब जानते थे कि बड़े-बड़े देवता, सिद्ध, साधक भगवान्‌के दर्शनके लिये नित्य अयोध्या आते हैं तथा किसी-न-किसी प्रकार भगवान्‌के दर्शन करके अपनेको कृतार्थ करते हैं । हाय ! मैं उस आनन्द-सिन्धुकी एक बिन्दुमात्र झलक कैसे पाऊँ ? आजतक पुरोहिती कर्म, जो वेदों-शास्त्रोंद्वारा निन्दनीय है, केवल इसी एक अभिलाषासे कर रहा हूँ कि भगवान्‌के दर्शन होंगे, उन्हें अपनी गोदमें खिलाऊँगा । वे बालक्रीड़ाएँ जिस समय मेरे सम्मुख करेंगे, तब तो मैं अपनेको परम धन्य मानूँगा । यह सही है, जब वे बड़े होंगे तो विद्या पढ़ने मेरे पास ही आयेंगे, पर तब तो वे शिष्टाचार-सम्पन्न होंगे और वह सुख उस समय मुझे नहीं प्राप्त हो सकेगा, जो आज है । जब मैं राजसभामें बैठता हूँ और उस समय जब वे अपने आँगनमें नाचते हैं अथवा दौड़ते हैं, उस समय वह नूपुरकी ध्वनि मेरा चित्त अपनी ओर बरबस खींच लेती है । 'नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ।'

महर्षि वशिष्ठ, जिनकी प्रतिभामें मानसकारने लिखा है—

गुरु बिबेकसागर जगु जाना । जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना ॥

ऐसे ज्ञानी वशिष्ठ जब संध्या, अग्निहोत्र, पूजा, वेदाध्ययन आदि, जो भी नित्यकर्म करते हैं, उनका ध्यान वहाँसे हटकर मनमोहन श्रीरामको गोदमें खेलानेके लिये करता है । वे यही सोचते हैं कि 'तुलसी अस बालक सों नहि नेह कहा जप जोग समाधि किए ।'

प्रभुने इस भावको जान लिया, वे तो भक्तवत्सल हैं । वे अपने प्रेमीको प्रसन्न करनेके लिये उसकी भावनाके अनुसार चलते हैं ।

राम सदा सेवक रुचि राखी । बेद पुरान साधु सुर साखी ॥

ऋषि नित्य प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें सरयू-स्नान करके रास्तेमें वेदमन्त्रोंको गुनगुनाते हुए अपने आश्रमपर लौटते थे । वे कह ही रहे थे कि—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं
लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्ध-
मधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः
सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं
सिद्धिप्रदं कामदम् ॥

यह गणेश-वन्दना कर चुके, तब फिर उसी चितचोर बालकका ध्यान चित्तमें आ गया । अब वेदमन्त्रोंको भूलकर वे उसी बालकका स्मरण करते हुए कहते हैं—

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥

अथवा—

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि
मंजु बनी मनिमाल हिएँ ।
नवनील कलेवर पीत झँगा
झलकैं पुलकैं नृप गोद लिएँ ॥
अरबिन्दु सो आनन रूप मरंदु
अनंदित लोचन-भृंग पिएँ ।
मन मो न बस्यौ अस बालकु जौ
'तुलसी' जगमें फल कौन जिएँ ॥
(कवितावली, बालकाण्ड)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अथवा—

वर दंत की पंगति कुंदकली,
अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै
छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर
कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करैं 'तुलसी'
बलि जाउँ लला इन बोलन की॥
(कवितावली, बालकाण्ड)

इधर प्रातःकाल हो रहा है, रामजी कुछ सो रहे हैं, कुछ जाग भी रहे हैं, उस समय उनके मुख-कमलकी शोभाको देखकर माता कौसल्या पुनः-पुनः कह रही हैं—

जागिए रघुनाथ कुँवर, पंछी बन बोले ॥
चंद-किरन सीतल भई, चकई पिय मिलन गई,
त्रिबिध मंद चलत पवन पल्लवद्रुम डोले ॥ जागिए॰॰
प्रात भानु प्रगट भयो रजनी को तिमिर गयो,
भृंग करत गुंज गान कमलन दल खोले ॥ जागिए॰॰
ब्रह्मादिक धरत ध्यान सुर-नर-मुनि करत गान।
जागन की बेर भई नयन पलक खोले ॥ जागिए॰॰
'तुलसिदास' अति अनंद निरखि के मुखारबिंद।
दीनन को देत दान भूषन बहु मोले ॥ जागिए रघुनाथ॰॰

रामजी उठ बैठे, माताजीने उन्हें हृदयमें लगा लिया। आज उठते ही रामजी रोने लगे तथा इतने मचल गये कि दूध भी पीना छोड़ दिया। माता कौसल्या घबरा गयी, रामजीको पालनेमें झुलाती है, गोदमें लेती है, तरह-तरहके खिलौने देती है, परंतु वे चुपकते नहीं हैं तथा रुदनकी गति तेजीसे बढ़ती ही जा रही है। अब तो महारानी कौसल्या नाना प्रकारकी मान-मनौती करने लगी, देवी-देवता मनाने लगी—

पूजीं ग्राम देव सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

माता देवी-देवता मना चुकी, बालकको घी-तेलकी तुलासे तौल चुकी, परंतु रामजीने रोना नहीं बंद किया। माता कौसल्या अपनी सखियोंसे कहती है—'क्या करूँ, न जाने किस दुष्टाकी बालकको नजर लग गयी, जो यह चुप होता ही नहीं। अब मेरे मनमें एक बात याद आ रही है कि जिन कुलगुरुकी कृपासे यह बालक पैदा हुआ, ऐसे समयपर उन्हींको बुलाना उचित होगा। जब वे अपने अमृतमय कर-कमलोंसे बालकका मस्तक स्पर्श करेंगे तभी यह रोना बंद करेगा।' इसी भावको लेते हुए कविकुल-कुमुद-सुधाकर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी 'गीतावली' में कहते हैं—

आजु अनरसे हैं, भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हू,
रोवत राम मेरो, सो सोंच सबही के॥ १॥
देव पितर, ग्रह पूजिए तुला तौलिए घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसहि अरत जब
परत दृष्टि दुष्ट ती के॥ २॥
बेगि बोलि कुलगुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह
मंत्र पढ़े जो सुमिरत भय भी के॥ ३॥
जासु नाम सरबस सदा सिव पारबती के।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति
प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के॥ ४॥

महर्षि तो इसी प्रतीक्षामें थे ही। वे जान गये कि भगवान्‌ने स्वयं माया रची है। आज प्रभु मेरे लिये ही रो रहे हैं, वे तुरंत दौड़ते हुए आये और बालकके मस्तकपर अपना अमृतमय हाथ रख दिया।

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु
सजल नयन तनु पुलक, रोम रोम जागे॥ १॥
लिए गोद, धाए गोद तें, मोद मुनि मन अनुरागे।
निरखि मातु हरषीं हिए आली ओट
कहति मृदु बचन प्रेम के से पागे॥ २॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तुम्ह सुर तरु रघुबंस के, देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी, तुलसी प्रसाद
जाके सकल अमंगल भागे॥ ३॥
(गीतावली, बालकाण्ड)

इस प्रकार महर्षिने भगवान् श्रीरामको गोदमें लेकर अपनेको परम धन्य माना। महारानी कौसल्याने जब वशिष्ठकी गोदमें रामजीको हँसते, किलकते तथा मुनिके साथ बाल-विनोद करते देखा, तब उन्होंने मीठे वचनोंद्वारा मुनिका अभिनन्दन किया। मुनि भगवान्‌को स्पर्श करते ही विदेह हो गये, उनका सारा ज्ञान भगवान्‌के बाल-चापल्यके आगे भाग गया और रामके प्रति एक अद्वितीय स्नेह उत्पन्न हो गया तथा यह वचन कहते हुए वे अपने गृहको चले गये—

जिन्ह कर मन इन्ह सन नहि राता।
ते जन बंचित किए बिधाता॥

रामनाम

(महात्मा गाँधी)

रामनाम कुछ थोड़े लोगोंके लिये नहीं है, यह सबके लिये है। जो रामनाम लेता है, वह अविध्वंसी कोषका अधिकारी बन जाता है और यह कोष ऐसा है कि जितना ही आप इसका उपयोग करें, उतनी ही इसमें वृद्धि होती जाती है। यह अनन्त कोष है। जैसा कि उपनिषदोंने कहा है कि अनन्तमेंसे अनन्त निकाल लेनेपर भी अनन्त ही शेष रहता है। यह शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक—सभी प्रकारके रोगोंकी रामबाण ओषधि है। रामनाम ईश्वरके असंख्य नामोंमेंसे एक है। चाहे 'राम'के स्थानपर 'कृष्ण' कह लीजिये या ईश्वरके असंख्य नामोंमेंसे और कोई नाम ले लीजिये, कोई अन्तर न पड़ेगा। मुझे रामनामका मन्त्र बचपनमें अपनी धायसे मिला था। मुझे भूतों और अन्धकारमें रहनेवाले दैत्योंसे डर लगता था। मेरी धाय मुझसे कहती थी—'रामनाम लेते रहो, भूत और दैत्य गायब हो जायँगे।' मैंने बच्चे-जैसे निश्चित विश्वाससे उसकी यह सलाह मान ली। उससे मेरी कायरता दूर हुई। यदि एक बच्चेका यह अनुभव है तो वयस्क व्यक्तिको तो श्रद्धापूर्वक रामनामका जाप करनेसे कितना महान् अनुभव हो सकता है! पर यह जाप हृदयसे ही होना चाहिये।

क्या आपके मस्तिष्कमें कुविचार आते हैं? और क्या तृष्णा और विषय-सुखने आपको परेशान कर रखा है? तो इनका रामनामसे बढ़कर कोई उपचार नहीं है। मान लीजिये, आपके मनमें इच्छा होती है कि बेईमानीसे और बिना मेहनत किये, बहुत-सा रुपया जमा कर लूँ। तब, यदि आपकी रामायणमें श्रद्धा है, तो आप स्वयंसे कहेंगे—'मैं अपने बच्चों और पत्नीके लिये धनसंग्रह क्यों करूँ जब कि यह निश्चित है कि वह उसका अपव्यय करेंगे। मैं क्यों न उन्हें उच्च-चरित्र, उच्च-शिक्षा प्रदान करूँ, जिसके सहारे वे आगे चलकर श्रम और मेहनतद्वारा जीवन-निर्वाह करनेमें समर्थ हो सकें।' रामनामके सतत जापसे आपके भ्रम और मोह दूर होंगे और आपको यह सजीव अनुभूति होगी कि आप अपने प्रियजनोंके लिये लाखों रुपये संग्रह करके मूर्ख ही बनते हैं, इसके स्थानपर उन्हें रामनामका अमूल्य कोष प्रदान कीजिये, जो सबको भव-बन्धनों और बार-बार जन्म लेनेके क्रमसे बचाता है। इस अनुभूतिके हर्षमें डूबा व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चोंसे कहेगा—'तुम्हारे लिये मैं वह कोष तो नहीं ला सका, जिसकी कामना मैंने आरम्भमें की थी, पर अब मेरे पास उससे भी कीमती कोष है।' वे अविश्वासपूर्वक पूछेंगे—'कहाँ है वह कोष? दिखाइये ना!' तब वह उत्तर देगा—'वह कोष है रामनाम, जो सब कोषोंसे अधिक कीमती है; क्योंकि इससे सब प्रकारके कोष-संग्रहकी प्यास मिटती है। यह मेरे हृदयमें प्रतिष्ठित है।' (संकलित)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विवेकका आश्रय

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

जिस प्रकार नेत्रोंकी सार्थकता प्रकाशके संयोगसे होती है, उसी प्रकार बुद्धिकी सार्थकता विवेकके संयोगसे है। किसीकी बुद्धि तीव्र हो, पर विवेक न हो तो उसे जीवनके लक्ष्यका या लक्ष्य-प्राप्तिके साधन-पथका, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य और सत्य-असत्यका ज्ञान नहीं हो सकता। न्याय तथा करुणापूर्ण दैवी विधान तथा सेवा और तपके फलसे मानव-देह मिल जानेपर भी जबतक दैवीकृपाके संयोगसे विवेक सुलभ नहीं होता है अथवा विवेक सुलभ होनेपर भी जबतक प्रत्येक कर्म, भाव और विचारके साथ विवेक नहीं लिया जाता तबतक मानव-आकृतिके पीछे मानवी प्रकृतिका निर्माण नहीं हो पाता है।

संतकी यह सुन्दर खरी अनुभूति है कि विवेकयुक्त जीवन ही मानव-जीवन है; शक्तिका अविवेकपूर्वक भोगमें ही उपयोग होना पशु-जीवन है। अविवेकपूर्वक शक्ति, सम्पत्ति तथा अधिकारका उपभोगके साथ अभिमान रहना आसुरी जीवन है। शक्ति, सम्पत्ति तथा अधिकारके द्वारा दूसरोंकी सेवा और सबके हितका ध्यान रखना मानवी प्रकृति है। दूसरोंकी सेवा तथा सर्वहितकारी प्रवृत्तिकी गतिविधिके द्वारा ही विवेकका परिचय मिलता है। शिक्षित होते हुए भी विवेकहीन व्यक्तिद्वारा अपने सुख-स्वार्थकी लोलुपतासे अनेक बुराइयोंका ही प्रसार होता रहता है; इसीलिये शिक्षाके साथ दीक्षा आवश्यक है। दीक्षा मिलनेपर विवेक होता है। दीक्षा वही है जिसके द्वारा प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति और योग्यताके सदुपयोगका ज्ञान होता है। विवेकको निरन्तर साथ लेकर ही परमार्थका प्रेमी साधक सद्गति—परम गति प्राप्त करता है। विवेकके द्वारा ही साधककी तपस्या सफल होती है। कामना तथा दोषोंका त्याग सुगम हो जाता है और बिखरी हुई प्रीति सब ओरसे सिमिटकर पूर्ण परमात्मासे मिलकर साधकको पूर्णता प्रदान करती है। विवेकी मानव राग-द्वेषकी सीमासे अपने-आपको अलग रखते हुए प्रतिकूल परिस्थितिमें कष्टसहिष्णु, गम्भीर तथा शान्त चित्तवाला और अनुकूल परिस्थितिमें उदार, दानी, विनम्र तथा अभिमानरहित होता है। विवेकका परिचय हर्ष-शोक, सम्मान-अपमान, संयोग-वियोग तथा लाभ-हानिके अवसरपर बुद्धिकी समतासे मिलता है। विवेकीका सारा पुरुषार्थ तृष्णाके त्याग, वासनाके नाश, सर्वहितकारी सेवा तथा सहायता और बुद्धिको सम तथा स्थिर रखनेके लिये होता है।

अविवेकी प्राणी सुखोपभोग तथा मान-मायाका रागी-लोभी बनकर जीवनमें मिली हुई शक्ति-सम्पत्ति-योग्यता तथा अधिकारका दुरुपयोग करते हुए विनाशका दुःख देखता है। विवेकी मानव सुखासक्तिको त्यागकर मान-मायाके प्रलोभनसे मुक्त रहकर प्राप्त शक्ति-सम्पत्ति, योग्यता तथा अधिकारका सदुपयोग करते हुए दैवी गुणोंके विकासका अलौकिक सुख देखता है। अविवेकी मानवमें दुर्बलताओं तथा दोषोंकी वृद्धि होती है; विवेकीमें उनकी निवृत्ति होती है। अविवेकी प्राणी आलसी, प्रमादी और स्वच्छन्दमनवाला होता है; विवेकी सदा तत्पर, इन्द्रियजित्, सत्यनिष्ठ और बुद्धियुक्त होता है। अविवेकी प्राप्त बलोंका भोगी होनेके कारण उनका अभिमानी होता है, विवेकी उनका सेवामें सदुपयोग करनेके कारण उन बलोंका स्वामी होता है। अविवेकी प्राणी प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध, हिंसा आदि वृत्तियोंके द्वारा अपने जीवनमें सब कुछ अशुद्ध-असुन्दर बना डालता है, विवेकी मानव ऐसी परिस्थितिमें क्षमा, दया, सहिष्णुता, उदारता, नम्रता, सरलता और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संतोष-धैर्य आदि दैवी सम्पत्तिसे अपना समग्र जीवन शुद्ध-सुन्दर बना लेता है। अविवेकी असार सुखोंके लोभसे जीवन व्यर्थ खो देता है, विवेकी शाश्वत शान्ति तथा अखण्ड आनन्दके लिये तप, त्याग, दान, ज्ञान और ध्यान कहीं भी शिथिल नहीं होने देता है। अविवेकी प्राणी जितना अधिक भोगी होता है उतना ही अधिक उसे जड़ता, पराधीनता तथा शक्तिहीनताका दुःख देखना पड़ता है।

विवेक वही है जिसके द्वारा संयोगके रहते ही वियोग, जीवनके रहते ही मृत्यु, सुखमें ही उसका अन्त दुःख दीख पड़े; इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ भी सुखद—सत्य-सा प्रतीत होता है वही बुद्धि-दृष्टिसे परिवर्तनशील—असत् दीखने लगे। विवेकके प्रकाशमें जीवको संसारसे कुछ पानेकी लालसा नहीं रहती; जो कुछ मनके द्वारा असत् स्वीकार किया था, उसके त्यागकी ही इच्छा रहती है। विवेकके प्रकाशमें सब कुछ असत्—परिवर्तनयुक्त दीखता है, जो विवेककी कमीमें सत्य, स्थिर तथा सुखद दीखता था। विवेकके प्रकाशमें सत्यसे मानी हुई दूरी मिटा दी जाती है और संसारसे माना हुआ सम्बन्ध—वस्तु-व्यक्तिसे अपनत्वकी स्वीकृतिका सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है। विवेकके बिना सारी साधनाएँ कहीं धन तो कहीं मान या अधिकार भोगके बदलेमें बिक जाती हैं। विवेकके योगके बिना आर्थिक समृद्धि विलास-वृत्तिको प्रोत्साहन देती है; पदाधिकारकी उन्नति कहीं दीन तो कहीं अभिमानी बनाती है। विवेकपूर्वक संतोष और संयमका आश्रय ही कल्याण-साधनाकी भूमि है। विवेकका आश्रय लिये बिना जीवनका सारा पुरुषार्थ भूल—भ्रान्ति-अज्ञानसे आच्छन्न रहता है। विवेकी मानवको ही लक्ष्यका ज्ञान होता है और जीवनकी गतिमें उसी ज्ञानका ध्यान रहता है। विवेकके प्रकाशमें अपने आपको सेवक बना लेना और सेवा करना साधनाका आरम्भ है; त्यागी तथा पूर्ण दानी होना साधनाका मध्य है; पूर्ण प्रेमी होना साधनाका अन्त है।

विवेकके प्रकाशमें मानव प्राप्त वस्तुको अपनी न मानकर दाताकी दी हुई जानता है; परायी वस्तुके प्रति लालची नहीं होता है; किसीका अहित नहीं चाहता है; सदा अभिमान-मोह-लोभरूपी बन्धनसे मुक्त रहता है और जब चाहता है, तब अपने परम प्रियतमका भक्त बन जाता है।

चोखी सीख

आसक्ति करनी हो तो भगवान्‌के नामरूपमें करो॥
कामना करनी हो तो निर्मल भजनकी करो।
क्रोध करना हो तो अपने दुर्गुणोंपर करो॥
लोभ करना हो तो भगवान्‌के स्मरणका करो।
मोह करना हो तो भगवान्‌की लीलामें करो॥
मद करना हो तो भगवत्-प्रीतिका करो।
अभिमान करना हो तो भगवान्‌के दासत्वका करो॥
वैर करना हो तो अपने दुराचारोंसे करो।
हिंसा करनी हो तो अपने अज्ञानकी करो॥
समीप रहना हो तो भगवच्चरणोंके रहो।
दूर रहना हो तो बुरे संगसे रहो॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

समाजकी मौन-स्वीकृतिसे अपराध होता है

(लेखक—श्रीमनोहर मुनि शास्त्री साहित्यरत्न)

वनकी झुटपुटमें प्रशान्त महासागर-सा शान्त योगी खड़ा है। एक ग्वाला गायें लिये आया और इधर-उधर चरती हुई गायोंको योगीके सुपुर्द कर हवामें कुछ कहता-सा लौट गया। संध्याको ग्वालेने देखा—प्रस्तर-प्रतिमा-सा योगी खड़ा था पर गायें नदारद। गायोंको न पाकर उसकी त्योरियाँ चढ़ गयीं। उसका संदेह रुक-रुककर सामने खड़े योगीपर जाता था। वेश योगीका और काम चोरके? ग्वालेकी आँखोंसे अंगार बरसने लगे। गायोंको बाँधनेके लिये लायी हुई कीलें उसने योगिराज महावीरके कानोंमें ठोंक दीं।

अपने प्रभुपर विपत्तिका पहाड़ टूटते देख देवराज इन्द्रका खून खौल उठा, 'आज्ञा दीजिये, देव! एक ग्वाला मेरे आराध्यपर इतनी बर्बरता बरसाये? इन्द्रकी आँखें सह नहीं सकतीं। जल्दी कीजिये देव! हाथोंसे वज्र फिसला जा रहा है।'

और महावीर बोले—

'अधीर न हो, देवेन्द्र! वाणीमें मिश्री घोलते हुए महावीरने फिर कहा—'तुम्हें विश्वास है, देवेन्द्र! तुम्हारा वज्र ग्वालेको समाप्त कर सकता है?'

'हाँ हाँ भगवन्! वज्रका एक ही प्रहार काफी है। मूर्ख ग्वालेका सिर धूलमें लोटने लगेगा।' देवेन्द्रने कहा।

'भोले न बनो देवेन्द्र! तुम्हारा वज्र शरीरको मार सकता है। पर क्या आत्माको भी मार सकता है? आत्मदर्शन जरा गहराईसे समझो। तुम्हारे एक नहीं, हजार अस्त्र भी आत्माके एक अणुको मारनेमें असमर्थ हैं; क्योंकि हर आस्तिक दर्शन आत्माकी शाश्वत मुसकानमें विश्वास रखता है। जबतक आत्माकी दुर्वृत्तियाँ न मरीं, तबतक शरीरको मार देना कोई महत्त्व नहीं रखता।'

'दर्शनकी पहेलियोंको बुझाना दार्शनिकोंका काम है। वहाँ मुझ-जैसोंका प्रवेश नहीं है भगवन्! पर योगीश्वरका अपमान देखनेकी ये आँखें आदी नहीं हैं।'

देवेन्द्रकी अबोधतापर महावीर मुसकरा उठे और बोले, 'देवेन्द्र! दण्डशक्तिकी असफलता तो ये आँखें देख चुकी हैं। तीस वर्षोंतक पिताके साम्राज्यमें दण्डशक्तिके प्रयोग देखे हैं। यदि दण्डका डंडा जीवनको बदल सकता तो मुझे वनकी राह न लेनी पड़ती। पुलिसकी हथकड़ियाँ अपराधीको मिटा सकती हैं, अपराधको नहीं। वह व्यक्तिको समाप्त कर सकता है, वृत्तिको बदल देनेकी क्षमता न वज्रमें है, न लोहेकी बेजान शृंखलाओंमें। तलवारकी धार यदि जीवनको बदल सकती तो ऋषिकी उपदेश-धारा अवतरित ही नहीं होती।'

अपराध और अपराधीकी मनोवृत्तिका विश्लेषण आगे बढ़ाते हुए महावीर बोले—'तुम और तुम्हारे समाजकी आँखें केवल अपराधीको देखती हैं, किंतु परिस्थितियोंके वे धागे उनकी स्थूल आँखोंमें नहीं समाते, जिनसे बँधकर वह अपराधके लिये प्रेरित होता है।'

जीवनके शान्त एकान्त क्षणोंमें कभी एक क्षण भी सोचा था कि व्यक्ति जीवनकी सीमा-रेखाका अतिक्रमण करता है पर इसके लिये उसे विवश करनेमें तुम और तुम्हारे समाजका कितना हाथ है? यदि अपराधीको तुम घृणासे न देख स्नेह और सहानुभूतिके आलोकमें देखनेका प्रयास कर सको और कोलाहलमें उसके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धड़कते दिलकी धड़कन सुन सको तो तुम्हें उसकी सरलता—पवित्रताके दर्शन हो सकते हैं और यह भी निश्चित है कि बिना समाजकी मौन स्वीकृतिके एक व्यक्ति अपराध कर ही नहीं सकता। चर्खेका एक धागा टूटनेपर चतुर जुलाहा पूरे चर्खेको देखता है।

जल्दी न करो देवेन्द्र। शीघ्रता कभी अनर्थ भी करा देती है। अपराधीके मनोविज्ञानको देखो।'

और महावीर मौन हो गये। जीवनके अन्तर्विज्ञानको पाकर देवेन्द्र गद्गद हो गये और भगवान् महावीरके चरणोंसे लिपट पड़े।

प्रार्थनामय जीवन

दिव्यताका प्रारम्भ

(लेखक—श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)

[गताङ्कके पृष्ठ ९३६ से आगे]

(९)

जब भी कोई घटना हमारे सूक्ष्म मानसिक जगत्में घटित होती है, उस समय वह घटना स्थूल भौतिक जगत्में भी घटित होती है; और जिस समय कोई घटना स्थूल जगत्में घटित होती है, उसी समय वही घटना बिलकुल उसी रूपमें हमारे मानसिक जगत्में भी घटित होती है। हमारा मानसिक जगत् और यह भौतिक जगत् इस प्रकार एक-दूसरेमें ओत-प्रोत है कि एकसे दूसरेको अलग नहीं किया जा सकता। इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यह समस्त विश्व हमारे मनका ही विराट् रूप है। इसीलिये यह कहा जाता है कि हमारा मन ही हमारे बन्धन और मोक्षका मूल कारण है।

हम जो कुछ भी हैं, अपने विचारोंके ही फलस्वरूप हैं और यदि हम अपने जीवनमें कोई सुधार या अभ्युदय करना चाहते हैं तो हमें अपने विचारोंका सुधार और अभ्युदय करना चाहिये। ऊँचे विचारोंद्वारा ही हम ऊपर उठ सकते हैं। दिव्य जीवनकी प्राप्तिके लिये यदि हम और कुछ न कर सकें तो कम-से-कम उसकी आकाङ्क्षा, आशा और कल्पना तो कर ही सकते हैं। दिव्य जीवनकी इच्छा या कल्पना ही दिव्य जीवनका प्रारम्भ है। दिव्य जीवनकी कामना ही दिव्य जीवनकी ओर हमारा पहला कदम है। जहाँ चाह है वहाँ राह है। दिव्य कामना स्वयं ही हमारे लिये दिव्य जीवनका मार्ग प्रशस्त करती है और हमारा पथ-प्रदर्शन करती हुई हमें दिव्य जीवनकी ओर ले जाती है।

आजकल महत्त्वाकाङ्क्षाओंकी चर्चा होने लगी है। यह प्रसन्नताकी बात है; क्योंकि हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाएँ ही हमें दिव्य जीवनकी ओर ले जा सकती हैं; परंतु इस विषयमें यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिये कि हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाका संतुलन संतोषके द्वारा बना रहे। हमारी आकाङ्क्षा भौतिक शक्ति या ऐश्वर्यके लिये न होकर आध्यात्मिक सुख-शान्तिके लिये होनी चाहिये। हमारा आदर्श या लक्ष्य एक भला, दयालु और शान्तिपूर्ण जीवन होना चाहिये। हमें विनम्रता और सेवासे पूर्ण कर्तव्यपरायण जीवन व्यतीत करनेकी कामना और कल्पना करनी चाहिये। यही आदर्श महत्त्वाकाङ्क्षा है। धनपति, सेनापति या राष्ट्रपति बननेकी आकाङ्क्षा बुरी नहीं है, न किसी वस्तुको अप्राप्य समझना ही उचित है, परंतु हमें स्वप्न महान् बननेके नहीं, बल्कि सज्जन और सच्चरित्र बननेके देखने चाहिये। सज्जनको तो शक्ति और समृद्धि स्वयं ही वरण करती हैं। विजय सच्चे वीर पुरुषके पीछे घूमती है और कीर्ति सच्चे महापुरुषको खोजती-फिरती है। समस्त भौतिक विभूतियाँ सद्गुणोंकी दासियाँ हैं। महापुरुषोंके पास सफलता बिना बुलाये चली आती है। कामनाका महत्त्व इसीलिये है; क्योंकि वह हमें योग्यता प्रदान करती है; परंतु यदि वह योग्यता हमारे अंदर है तो कामनाके अभावमें भी हमें वे सब वस्तुएँ प्राप्त हो जायँगी, जिनकी पात्रता हममें है। इस विश्वमें हर वस्तुका एक न्यायोचित मूल्य है; वह मूल्य चुका देनेपर वह वस्तु हमें बिना माँगे ही प्राप्त हो जाती है। मूल्य चुका देना ही अन्तिम काम है; कामना करना, माँगना या प्रार्थना करना तो प्रारम्भिक बातें हैं। जिन वस्तुओंको प्राप्त करनेकी योग्यता या पात्रता हममें होती है, उनकी ही आकाङ्क्षा हमारे हृदयमें होती है और वे वस्तुएँ हमें प्राप्त हो जाती हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हम जैसी कल्पना करते हैं वैसा ही हमारा जीवन बनता है। अपनी कल्पनाके द्वारा हम अपने भविष्यको ही नहीं, बल्कि अपने भूतकालको भी बदल सकते हैं; क्योंकि देश-कालका अस्तित्व हमारी कल्पनामें ही है। अपनी असाधारण पवित्रता और दिव्यताके द्वारा हम अपनी भावी संतानोंकी ही नहीं, बल्कि अपने पूर्वजोंकी भी सेवा कर सकते हैं। एक ही परम तत्त्व समस्त विश्वमें रम रहा है और उसके द्वारा तीनों कालकी हर वस्तु और हर व्यक्तितक हमारी सीधी पहुँच है। अपने बिछुड़े हुए स्वर्गीय बन्धुओंके साथ हम इस समय भी सीधा मानसिक सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं और शुभ कामनाओंके रूपमें उनतक अपना प्रेम पहुँचा सकते हैं।

अपने जीवनमें यदि हम अचानक ही कोई बड़ा परिवर्तन करनेमें असमर्थ रहें तो हमें निराश नहीं हो जाना चाहिये। हमें धैर्य रखना चाहिये और जितनी भी सफलता मिले, उससे संतोष रखते हुए दिव्यजीवनकी पूर्णताकी ओर निरन्तर आगे बढ़ना चाहिये। जैसे भी हम विचार करते हैं वैसी सफलता हमें तत्काल मिलती है। शान्तिके विचारोंसे शान्ति और संतोषके विचारोंसे सुख हमें अविलम्ब प्राप्त होता है। संतोषका अर्थ है हर अवस्थामें प्रसन्न रहना और अपनेको प्राप्त वस्तुओंका आदर करना तथा उनके लिये ईश्वरको धन्यवाद देना। संतोष ही परम सुख है और यह ऐसा सुख है, जिसे हम चाहे जब प्राप्त कर सकते हैं। मानसिक शान्तिके बिना हम किसी कार्यमें सफल नहीं हो सकते और मानसिक शान्ति हम संतोषके बिना नहीं प्राप्त कर सकते। शान्तिमय जीवन ही दिव्य जीवन है।

जब भी हम अशान्त या उद्विग्न हों तभी शान्तिकी प्राप्तिके लिये हमें शान्त आकारवाले भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। जब हम यह कल्पना करते हैं कि समस्त प्राणियोंके जीवन-दाता भगवान् प्रसन्नतापूर्वक सो रहे हैं, तब हमारे मनका बोझ हलका हो जाता है और हमें मानसिक विश्राम प्राप्त होता है तथा नींद आ जाती है।

शान्तचित्तमें ही दिव्य विचार आते हैं। शान्तिपूर्ण विचारधारा ही हमें दिव्य जीवनकी ओर ले जाती है। शान्तिके सरोवरमें स्नान कर लेनेसे हमारी मानसिक थकान दूर हो जाती है और सद्गुणोंके दिव्य वस्त्र धारण करके हम नये जीवनको अपनानेके लिये तैयार हो जाते हैं। यह एक ऐसा पुनर्जन्म है, जिसमें आपका केवल शरीर ही नहीं बदल जाता, बल्कि आपके प्राण, इन्द्रियाँ, मन, आत्मा और समस्त भौतिक पदार्थ भी बदलकर एक नये ही रूपमें आपके सामने आते हैं। आपका जीवनदर्शन बदल जानेसे आपका संसार बदल जाता है। आपके जीवनमें एक विराट् क्रान्ति होकर युगपरिवर्तन हो जाता है। वेदका वचन है कि पड़े हुए सोते रहनेका नाम कलियुग है; जगकर बैठनेका नाम द्वापर है; उठकर खड़े होनेका नाम त्रेता है और अपने लक्ष्यकी ओर कदम उठाकर चल पड़नेका और चलते रहनेका नाम सत्ययुग है। चलते रहो, चलते रहो, यही प्रगतिके लिये वेदका सनातन संदेश है। रुकना ही मृत्यु और आगे बढ़ना ही जीवन है।

आप स्वयं अपने भाग्यविधाता और युग-निर्माता हैं। दिव्य जीवन स्वयं ही आपकी ओर आ रहा है। आपको केवल यह करना है कि अपने आपको उसके लिये तैयार कीजिये और आगे बढ़कर उसका स्वागत कीजिये। आधे रास्तेमें ही उससे आपकी भेंट हो जायगी। आपकी आत्मा-की प्रत्येक आकाङ्क्षा पूर्ण होगी और जिन वस्तुओंकी आपको आवश्यकता है, वे आपको अवश्य प्राप्त होंगी। प्रकृतिके अपार भण्डारसे वे वस्तुएँ चल पड़ी हैं और आपकी ओर आ रही हैं। अपनी आशाओंसे हम उनको अपनी ओर बुलाते हैं; और निराशा, आशङ्का या भयद्वारा उनको पीछे हटाते हैं। हर वस्तु वहीं जाती है जहाँ उसको बुलाया जाता है और जहाँ उसका स्वागत किया जाता है। आकाङ्क्षाके द्वारा हम अपनी प्रिय वस्तुओंको निमन्त्रित करते हैं और आशाके द्वारा उनका स्वागत करते हैं।

हम अपने जीवनको जैसा भी बनाना चाहते हैं उसका एक परिपूर्ण नक्शा हमें अपने कल्पना-पटपर अङ्कित कर लेना चाहिये। जैसा हम अपने आपको बनाना चाहते हैं उसकी एक वैसी ही मूर्ति हमें अपने कल्पनाजगत्‌में बना लेनी चाहिये। अपने जीवनकी इमारत हम पहले अपने कल्पना-जगत्‌में बनाते हैं तभी वह भौतिक जगत्‌में बनती है। कल्पना-जगत्‌का यह निर्माणकार्य हमें उतने ही अध्यवसायसे करना चाहिये जितने अध्यवसायसे हम स्थूल-जगत्‌में निर्माण-कार्य करते हैं। चित्रकार, मूर्तिकार और कवि अपनी श्रेष्ठ कलाकृतियोंके निर्माणमें वर्षोंकी अनवरत साधना लगा देते हैं। कई कलाकृतियोंके पीछे तो उनके निर्माताओंकी जीवन-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

व्यापी साधना रहती है। हमारी अपनी जीवन-योजना भी ऐसी ही कलाकृति है जिसमें हमें जीवनभर संशोधन-परिवर्धन करके उसे पूर्णतातक पहुँचाना चाहिये। राष्ट्रके नेता जैसे राष्ट्रनिर्माण-की योजनाएँ बनाते हैं, वैसे ही हमें अपने जीवनकी योजनाएँ बनानी चाहिये और उनको सफल बनानेके लिये अपनी समस्त मानसिक शक्तियोंका उपयोग करना चाहिये। हमारी अज्ञात चेतनामें बहुत-से शक्तिके प्रवाह बह रहे हैं, जिनपर आत्मसंयम-का बाँध लगाकर हम दिव्य शक्तियोंका उत्पादन करके उनसे बड़े चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकते हैं। हमारे मनरूपी राष्ट्रके नागरिक हमारे विचार हैं। अपने विचारोंको अनुशासनमें रखकर ही हम अपने जीवनका पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

हमें सदैव पुरुषार्थ और सफलताके विचार करने चाहिये; समृद्धि और दयालुताका आदर्श अपने सम्मुख रखना चाहिये; सेवा और शान्तिसे पूर्ण जीवनको ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिये, प्रेम और पूर्णताकी कल्पना करनी चाहिये; वैभव और कल्याणकी आशा करनी चाहिये; और सबके प्रति मैत्री-पूर्ण और मङ्गलमय दृष्टिकोण रखना चाहिये।

अपने दृष्टिकोणको रचनात्मक बनानेका उत्तम उपाय यह है कि हम अपने साथियों और पड़ोसियोंको रचनात्मक प्रेरणाएँ प्रदान करें। जैसे सुझाव हम अपने मित्रोंको देते हैं, वैसे ही सुझाव हमें भी उनसे प्राप्त होते हैं। अपने मित्रोंसे सदैव यही कहना चाहिये कि 'मित्र! मैं हर अवस्थामें तुम्हारे साथ हूँ। तुमसे मुझे बहुत-सी आशाएँ हैं। तुम मेरी आशा हो। तुम पवित्र और दिव्य जीवनकी ओर बढ़ो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। हमलोग अपने पवित्र लक्ष्यको अवश्य प्राप्त कर लेंगे।'

और यदि आपका कोई मित्र आपको निराशापूर्ण सुझाव देते हुए कहे कि 'तुम बिल्कुल मूर्ख और दुष्ट हो। तुमसे संसारमें कुछ नहीं हो सकता। तुम पृथ्वीके भार हो।' तो अपने मित्रसे प्रकट और मौनरूपमें भी कहिये कि 'हे मित्र! यह असम्भव है कि तुम्हारे-जैसे बुद्धिमान् और सज्जनका मित्र मूर्ख और दुष्ट हो। तुम्हारे सत्सङ्गसे लाभ उठाकर और तुमसे प्रेरणा लेकर मैं भी संसारमें कुछ कर जाऊँगा। अब मैंने तुम्हें अपना मित्र बना लिया है, इसलिये अब मैं पृथ्वीपर भार नहीं हूँ। तुम्हारे साथ अब सेवा, संयम और पुरुषार्थका पथ मैंने भी अपना लिया है। तुम्हारी ओर मुँह करके अब मैंने भी दिव्य जीवनकी ओर मुँह कर लिया है।'

एक-दूसरेको दिव्यताकी प्रेरणाएँ देते हुए हमें दिव्य पथका पथिक बनना चाहिये। अपने किसी एक मित्रको या स्वयं अपने आपको दिव्यताकी प्रेरणा देना ही दिव्य जीवनका प्रारम्भ है। इस प्रेरणाका श्रेष्ठरूप है—ईश्वरसे दिव्य गुणोंके लिये प्रार्थना!

मेरी चाह

प्रभो!

मैं यह नहीं चाहता कि आप मेरी विपत्तियोंका नाश कर दें और संसारकी मारसे मुझे बचा लें। मैं चाहता हूँ—प्रत्येक विपत्तिमें मुझे आपके मंगलमय आशीर्वादका और संसारकी प्रत्येक मारमें आपके मधुर मनोहर प्यारका और कोमल कर-स्पर्शका सुखद अनुभव हो।

मैं यह नहीं चाहता कि आप मेरे शत्रुओंको मार दें। मैं चाहता हूँ—आप मेरे जीवनमें ऐसा विलक्षण सद्भाव भर दें जिससे सभीको मेरा मित्र बनना पड़े।

मैं यह नहीं चाहता कि आप संसारकी वस्तुस्थितियोंसे मेरी कामनाओंको पूर्ण करें। मैं चाहता हूँ—मेरे लिये आपके सिवा संसारमें ऐसी कोई वस्तु या स्थिति रहे ही नहीं, जिसकी ओर मेरा कभी मन चले।

मैं यह नहीं चाहता कि आप मुझे संसारमें अचल कीर्ति और अमित यश दें। मैं चाहता हूँ—कीर्ति-यशकी चाह करनेवाला 'अहं' ही मुझमें न रहे।

मैं यह नहीं चाहता कि मेरा शरीर अमर रहे। मैं चाहता हूँ—शरीरमें स्थित मैं स्वयं ही शरीरसे सदा अपनेको अलग देखूँ।

मैं यह नहीं चाहता कि आप मुझे मोक्ष प्रदान करें। मैं चाहता हूँ—मेरी बन्धनकी कल्पनाका ही नाश हो जाय।

आप मेरी इन चाहोंको—यदि ये आपकी चाहके अनुकूल हों तो पूर्ण कर दें, नहीं तो, अपनी चाहके अनुसार ही करें। मेरी चाहोंकी कोई परवाह न करें।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मानवताकी पुकार

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'हे ईश्वर !' उडसनको एक प्रकारका उन्माद हो गया था। कोई स्वस्थ सबल पुरुष, कोई सुन्दर शिशु या सुन्दरी युवती देखते ही वह जहाँ-का-तहाँ खड़ा हो जाता था। दोनों हाथोंसे अपने नेत्र ढक लेता था और उसके पैर काँपने लगते थे। वह कुछ बड़बड़ाने लगता था। इस रोगका परिणाम यह हुआ था कि वह नगरोंके भीड़भरे मार्गोंसे भय खाने लगा था। उसे अपने एकान्त कमरेमें बंदी रहना प्रिय था और यदि वहाँसे निकलना ही आवश्यक हो तो वह तब निकलना पसंद करता, जब उसे मार्गमें किसीके मिलनेकी सम्भावना न हो।

'मस्तिष्कको धक्का लगा है। मानसिक विकृति है। वह पागलपन धीरे-धीरे दूर होगा।' चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकोंने कोई अच्छी सहायता नहीं दी। उन्होंने केवल सम्मति दी। बेचारी लेडी उडसन—उडसन तो अपनी पत्नीसे भी घबराने लगा था। वह उसके सम्मुख भी नेत्र बंद कर लेता और काँपने लगता।

'ईश्वरके लिये भागो ! भागो जल्दी ! भूगर्भगृहमें भाग जाओ।' प्रारम्भमें उडसन प्रायः चिल्ला पड़ा करता था। 'पिशाच आ रहे हैं। वे पिशाच जो नापाम बमोंसे सारे संसारको भून देनेपर तुले बैठे हैं।'

बेचारा उडसन—उसे क्या पता कि नापाम बम तो बहुत पीछे छूट चुके। मनुष्य तो अब ऐसा पिशाच हो गया है कि उसने अणु बमसे भी आगे बढ़कर हाइड्रोजन बम बना लिया है और उससे भी अधिक घातकतम अस्त्रोंकी शोधमें लगा ही है। वह चाहता है कि दूर बैठा बटन दबा दे और एक भारी नगर जिसे वह शत्रु-नगर मानता है, अपने समस्त भवनों, लक्ष-लक्ष मानव-प्राणियों, पशुओं एवं विपुल वस्तुओंके साथ आधे क्षणमें इस प्रकार भस्से भस्म हो जाय जैसे धुनी रूईकी नन्हीं राशिपर प्रज्वलित अग्नि गिरी हो।

अणु एवं हाइड्रोजन बमोंकी उडसनने बात सुनी है—सुनना था उसे; क्योंकि वह एक हवाई सैनिक था। बात कितनी भी भयानक सुनी जाय, वह परोक्ष रहनेतक मनमें मूर्त नहीं होती। उसकी भयानकताका अनुमान हम लगा नहीं पाते। उडसनको सौभाग्यवश हिरोशिमा या नागासाकीके भस्मावशेष देखनेका अवसर नहीं मिला था। यद्यपि वह उत्सुक बहुत था उन्हें देखनेके लिये। यदि उसने उन्हें देख लिया होता—आज उसकी दशा और दयनीय होती।

'वे पिशाच ! वे गिरा रहे हैं नापाम बम !' उडसन अपनी दोनों आँखें बंद करके काँपता हुआ चिल्ला उठता था—'भगवान्के लिये भाग जाओ ! वे तुम्हें भूनकर धर देंगे !'

डाक्टरोंने ठीक कहा था। उसका उन्माद धीरे-धीरे घटने लगा है। अब वह चिल्लाता नहीं है। लेकिन लगता है कि अब भी वह उसी प्रकार बड़बड़ाता है। अन्तर इतना पड़ा है कि अब केवल उसके होंठ हिलते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं—'यह अच्छे लक्षण हैं। उसका मस्तिष्क सावधान होने लगा है। उसमें इतनी समझ आ गयी है कि सबके सामने चिल्लाना बुरी बात है। इसी प्रकार सोचना जारी रहेगा तो वह शीघ्र समझ जायगा कि उसका भय अकारण है !'

क्या सचमुच उसका भय अकारण है ? क्या मानव—ये मानवताके ठेकेदार शक्तिसम्पन्न राष्ट्रोंके कर्णधार अपनी पैशाचिकताका परित्याग करनेको प्रस्तुत हो गये हैं ! क्या उन्होंने विश्वको भूनकर धर लेनेकी अपनी प्रलयंकर योजनाओंमें कोई शिथिलता आने दी है ?

× × ×

उडसन कोरिया युद्धमें था। वह हवाई सैनिक ठहरा, अपने यानपर जमा बैठा था। उसका बमबाज यान आज दिनमें उड़ान ले रहा था। एक, दो, तीन—उडसनको आदेश मिला और उसने बटन दबा दिया। यानके नीचे बँधे बम बन्धनसे छूट गये। बड़ी शीघ्र गतिसे यान आगे बढ़ गया और पर्याप्त ऊपर उठ गया।

उडसनको कुछ नहीं हुआ उस समय। उस समय तो उसे प्रसन्नता ही हुई। नीचेसे धुआँ और लपटोंका अम्बार उठ रहा था। नापाम बमोंने अपनेमें भरी पेट्रोलकी कीच नीचे बिखेर दी थी और उसमें आग लग चुकी थी। शत्रु जल रहा था—शत्रु ! वह शत्रु जिससे उडसनको घृणा करना सिखलाया गया था। शत्रु जिसके सम्बन्धमें कहा गया था कि वह नरकके कीटसे भी घृणित और शैतानसे भी अधिक दुष्ट है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आक्रमण सफल रहा। उडसनका यान लौटा तो उसे समाचार मिला कि शत्रु पीछे हट गया है। अग्रगामी सैनिकोंने शत्रुकी सीमाके भीतर एक चौकीपर अधिकार कर लिया है।

उडसनका दुर्भाग्य! कितना अच्छा हुआ होता कि उसे उस दिन मित्रोंसे, सहयोगियोंसे, अफसरोंसे वह प्रशंसा न मिली होती। वह उस महत्त्वपूर्ण चौकीको लक्ष्य बनानेमें चूक गया होता। उसका यान गिर जाता और वह स्वयं जल गया होता अपने यानमें तो भी इतना क्लेश उसे न होता। परंतु यह सब होना नहीं था, नहीं हुआ।

उडसनकी प्रशंसा हो रही थी। अफसर उससे हाथ मिला रहे थे। शत्रुकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चौकी आज उसने भस्म कर दी और अपनी सेनाने अवसरका लाभ उठाकर उसपर अधिकार कर लिया।

'आप मुझे उस चौकीको देखनेकी अनुमति देंगे?' उडसनका दुर्भाग्य उस दिन उससे भरपूर बदला लेनेपर तुला था। क्या बिगड़ जाता वह यदि उत्साहातिरेकमें यह अनुमति न माँगता?

'अवश्य!' अफसरने बाधा नहीं दी। 'यद्यपि अभी वहाँ खतरा है; किंतु अपने एक अच्छे योद्धाका उत्साह हम तोड़ना नहीं चाहेंगे। हवाई जहाज वहाँ उतर नहीं सकेगा। तुम जीपसे जा सकते हो।'

'हे भगवन्!' उडसनको मार्गमें ही मूर्छा-सी आने लगी। उसके समीपसे जो एम्बुलेन्स (चिकित्सा गाड़ियाँ) जा रही थीं, उनमेंसे दारुण चीत्कारें उठ रही थीं। उनमेंसे जलते मांसकी गन्ध आ रही थी—जलता मांस—तो क्या उसने मनुष्योंको भून दिया है?

जब जीपसे उतरा वह, सामने ही एक शव पड़ा था। कोई आठ-दस वर्षका बालक होगा। उसके शरीरके वस्त्रोंका क्या पता लगना था, चमड़ा एवं मांसकी परत तक जल गयी थी। उसका वर्ण काला, झुलसा, स्थान-स्थानसे फटा और उसमेंसे बाहर आया मांस'''''''उडसनने नेत्रोंपर हाथ धर लिये।

कहाँतक वह नेत्र बंद किये रहता। कुछ स्त्रियाँ चीखती-चिल्लाती उसीकी ओर आ रही थीं। सैनिकोंने उन्हें थोड़ी दूरपर रोक दिया। कई गिर पड़ीं वहीं। वे उन्मत्त हो चुकी थीं। उन सबके सिरके केश जल गये थे। मुख ही नहीं, पूरा शरीर काला पड़ गया था। झुलसकर फट गया था स्थान-स्थानसे। वे पागल विकराल दिगम्बर दौड़ती पिशाचिनें-सी प्रतीत हो रही थीं।

उडसन बैठ गया वहीं पृथ्वीपर। उसको चक्कर आ रहा था। 'शत्रु-शत्रु!' कोई उसके सिरमें चिल्ला रहा था—'ये अबोध बच्चे, ये सुकुमारी युवतियाँ, ये तुम्हारी शत्रु हैं! तुमने इन्हें भून डाला है! पिशाच कहींके!'

उडसनको स्वयं पता नहीं कि वह कब चिल्ला पड़ा था और क्या-क्या कहता जा रहा था। उसे वहाँसे कैसे लौटाया गया और कब युद्धस्थलसे पीछे भेज दिया गया, इसका भी उसे कुछ पता नहीं। उसका प्रभाव दूसरे सैनिकोंपर प्रतिकूल पड़नेका भय था। स्वदेश लौटा दिया गया उसे और वहाँ चिकित्सकोंके प्रबल प्रयत्नसे पूरे तीन महीने पश्चात् वह इस योग्य हुआ कि स्वयं अपना दैनिक जीवन चलाने लगा है।

'अभी सावधानी अपेक्षित है।' चिकित्सकोंने श्रीमती उडसनको सम्मति दी है। 'इन्हें समाचार-पत्र एकदम न दिये जायँ। धीरे-धीरे मस्तिष्कके विशेष दोष भी दूर हो जायँगे।'

× × ×

'शान्ति! हमें शान्ति चाहिये!' उडसन जब शान्तिकी बात कहता है, तब उसकी वाणीमें एक अद्भुत उत्तेजना होती है। वह सैनिक रह चुका है और युद्धकी दारुण विभीषिकाको उसने देखा है। वह कहता है—'भगवान्के लिये अब युद्धकी बातें बंद कर दो। मनुष्यको पिशाच नहीं बनना है तो प्रत्येक मूल्यपर उसे युद्धकी भावना भगा देनी होगी।'

'भारत सदासे विश्वका पथदर्शक रहा है। वह अन्धकारमें गिरते मानवका महान् उद्धारक है, संसारमें बहुत-से लोग भारतकी प्रशंसा करते हैं। सहस्रों नहीं, लाखों और करोड़ों कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी, ऐसे मनुष्य हैं जो भारतीय शान्तिप्रियता-से प्रेम करते हैं। किंतु उडसनका प्रेम और ढंगका है। वह भारतका स्मरण करके भावविह्वल हो उठता है। उसके हृदयका केवल एक स्नेहाधार है, उसकी आशा एक ही स्थानपर अटकी है और वह है भारत। वह चर्चा चलते ही कहता है—'केवल भारत हमें युद्धके भयसे बचा सकता है।'

'ओह! कितनी अंधी है जनता! इन युद्धपिपासु पिशाचोंको जेलमें बंद क्यों नहीं कर दिया जाता!' उडसन अब पागल नहीं है; किंतु वह अत्यधिक भावुक है। युद्धने उसके मस्तिष्कको दुर्बल कर दिया है। अपने और पराये .... समझ नहीं पाता। किसी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राष्ट्रके नेता जब युद्धकी चर्चा करते हैं, शस्त्रास्त्र बढ़ानेके लिये कहीं कोई बजट आता है, उडसन आगबबूला हो उठता है—'ये दुष्ट मनुष्यको मनुष्यका मित्र नहीं बनने देंगे। इन्हें तो गोली मार दी जानी चाहिये।'

'भारत सेना एकत्र कर रहा है हमारी सीमापर। वह शस्त्रास्त्र ले रहा है अन्य देशोंसे!' इस प्रकारका प्रचार तो विदेशोंमें पाकिस्तानकी ओरसे चलता ही रहता है। कोई उडसनको चिढ़ाना चाहे तो ऐसे समाचार उसे सुना दे। वह उबल उठेगा—'झूठ! धूर्त कहींके। इन्हें कोर्टमें खड़े करके कोड़े लगाने चाहिये। भारत कहीं किसीपर आक्रमण कर सकता है?'

उडसनकी श्रद्धा अडिग है। आप उसे अर्धविक्षिप्त कह सकते हैं; किंतु वह है सीधा और अब भी उसमें सैनिकका अक्खड़पन है। उसका स्वप्न है—'भारतका सत्प्रयास सफल होगा। युद्धके पिपासुओंको अन्ततः जनता अवश्य जेलमें बंद कर देगी। मेरी रायमें उन्हें एकदम मार देना चाहिये। विश्वके सब मनुष्य समान हैं। वे परस्पर भाई हैं। उनका एक राष्ट्र क्यों नहीं बन सकता? और जबतक एक राष्ट्र नहीं बनता, भारतकी शुभ सम्मति मानकर वे परस्पर प्रेम-पूर्वक तो रह ही सकते हैं।'

'विश्वके राष्ट्रोंमें बहुत वैभिन्न्य है। उनके आदर्श परस्पर विपरीत हैं। उनका प्रेमपूर्वक रह पाना शक्य नहीं है।' उडसनसे यह बात कह देना सरल नहीं है। अभी वह बहुत शीघ्र उत्तेजित हो जाता है। वह 'युद्ध अनिवार्य है' इस कल्पनाको भी सह नहीं सकता।

'मेरा पड़ोसी निरामिषभोजी है और कुत्ते पालता है!' उडसनको कुत्ते बहुत अप्रिय हैं तथा सैनिक जीवन व्यतीत कर लेनेके कारण उसे आमिष अप्रिय नहीं है। वह जानता है कि उसका पड़ोसी उसका यह स्वभाव पसंद नहीं करता—'हम क्या परस्पर सिर फोड़ लें। मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि प्रलयतक हम दोनों इसी प्रकार पड़ोसी रह सकते हैं और कभी नहीं लड़ेंगे।'

'आप दोनों बुद्धिमान् हैं! सुसंस्कृत हैं।' आप उडसन-को यही कह सकते हैं।

'राष्ट्रोंमें मनुष्य ही तो हैं। भारत यही तो कहता है कि सब बुद्धिमान् सुसंस्कृत पड़ोसीके समान रहें।' उडसनको बड़ा क्रोध है युद्धकी भावना बनाये रखनेवाले कुछ लोगोंपर—'मुट्ठीभर मूर्ख अपने स्वार्थके लिये पिशाच बन गये हैं। वे संसारको भून देना चाहते हैं। उन्हें पकड़कर बंद कर दो! बस!'

उन्हें ही पकड़कर बंद कर दिया जा सकता—बेचारा उडसन! वह कहाँ समझ पाता है कि उन्हें पकड़ना कितना कठिन है। भय तो यह है कि उनका कोई चर किसी दिन उडसनको ही कहीं पकड़कर बंद न कर दे पागलखानेमें या शत्रुका प्रचारक कहकर।

उडसनका बंद हो जाना असम्भव नहीं है; किंतु क्या मानवताकी वह पुकार बंद हो जायगी जो पागल उडसनके अन्तरमें अकस्मात् जाग उठी है? वह क्या अकेले उडसनका प्रलाप है? क्या वह आहत, भीत मानवताकी करुण पुकार नहीं है? और यदि सचमुच वह मानवताकी पुकार है तो—तो उसे क्या पिशाच कभी दबा सका है जो आज दबा लेगा।

मानवता—ईश्वरका विश्वको सर्वश्रेष्ठ वरदान मानवता और वह घृणा, द्वेष, बर्बर पैशाचिकतापर विजयिनी होकर रहेगी!

प्रश्न

भजन-धनको छोड़कर और कौन-सा धन चाहोगे?
प्रेम-अमृतको छोड़कर और कौन-सी सुधा पीओगे?
सत्संगके लाभको छोड़कर और किस लाभको सोचोगे?
सेवा-सम्पत्तिको छोड़कर और कौन-सी सम्पत्ति चाहोगे?
पर-हितको छोड़कर और कौन-सा धर्म साधोगे?
भगवान्‌के चिन्तनको छोड़कर और किसका चिन्तन करोगे?
भगवच्चरणोंमें रति छोड़कर और किसमें प्रीति करोगे?
मनके कुविचारोंको छोड़कर और किस शत्रुको मारोगे?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गीतामें ज्ञानयोग

(लेखक—पं० श्रीगिरिजादत्तजी शुक्ल 'गिरीश')

जीवनमें हम निरन्तर ज्ञानकी खोजमें लगे रहते हैं। ठोकरोंके लगनेसे हम उस कारणको समझनेकी चेष्टा करते हैं, जो ठोकरें लगनेके मूलमें हैं। संसारमें भ्रमणशील होकर महात्मा बुद्धने भी इन ठोकरोंकी पीड़ाका अनुभव किया था। जिस ज्ञानसे अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् दोनोंमें ही लगनेवाली ठोकरोंका सदाके लिये अन्त हो जाय, उसीकी प्राप्तिके लिये उन्होंने जंगलकी राह ली थी। श्रीमद्भगवद्गीता भी हमें इसी ज्ञानका प्रकाश दिखलाती है।

गीताके अनुसार वही ज्ञान सच्चा ज्ञान है, जिसके द्वारा हम जड, चेतन एवं चराचरमें व्याप्त अविनाशी तत्त्वको सम भावसे देख लें। जबतक हममें कहीं और किसी प्रकारकी आसक्ति बची-खुची पड़ी रह जायगी, तबतक हम सर्वोपरि अविनाशी-तत्त्वके प्रति पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण नहीं कर सकते, उसके प्रति पूर्ण आकर्षण नहीं अनुभव कर सकते, जब उक्त ज्ञानके प्रति हमारा आत्मसमर्पण, आकर्षण परिपूर्ण स्थितिको पहुँचता है, तब यह कहा जाता है कि हम ज्ञान-योगके अधिकारी हुए।

गीतामें ज्ञानयोग और कर्मयोगका इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि इनमेंसे किसी एककी प्रधानता और द्वितीयकी गौणता उसमें दिखाना सम्भव नहीं है; यह और ही बात है कि अपने युग-विशेषके उपयोगके लिये हम उसकी शिक्षाओं-को एक विशेष दिशाकी ओर ढलती हुई दिखानेमें भी सफल हो जायँ। गीताकारने स्वयं कहा है—

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

'जो न किसीसे द्वेष करता है और न किसी वस्तुकी कामना करता है, उसे संन्यासी ही समझना चाहिये। हे अर्जुन! ऐसा पुरुष अनायास ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है।'

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥

'ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनोंको जो लोग एक दूसरेसे पृथक् बतलाते हैं, वे पण्डित नहीं हैं, अनुभवशून्य बालक हैं। जो व्यक्ति एकमें भी व्यवस्थित होता है; उसे दोनों ही-के फलस्वरूप परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है।'

इस विषयको और भी स्पष्ट करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

'सांख्ययोग, ज्ञानयोगके द्वारा जिस स्थानकी प्राप्ति होती है, उसीकी उपलब्धि कर्मयोगके द्वारा भी हो सकती है। जो सांख्ययोग तथा कर्मयोगको अभिन्न मानता है, उसीकी दृष्टि निर्मल है।'

श्रीकृष्णने अपने भक्तोंकी चार श्रेणियाँ बतायी हैं—(१) आर्त, (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थी, (४) ज्ञानी।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

'उनमें भी नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित ज्ञानी विशेष उत्तम है; क्योंकि मुझे तत्त्वतः जाननेवाला ज्ञानी बहुत प्रिय लगता है और ऐसा ज्ञानी मुझे भी बहुत प्यार करता है।'

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥

'मेरे भक्तोंकी चारों श्रेणियाँ उत्तम हैं, किंतु ज्ञानी तो मुझसे अभिन्न ही है, मेरा स्वरूप ही है, अचञ्चल बुद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण वह मुझमें ही अच्छी प्रकारसे व्यवस्थित है।'

गीताके एकादश अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूपका परिचय दिया है। इस प्रसंगसे व्यासजीने अद्वैत-तत्त्वको वाणीके बन्धनमें लानेका सफल प्रयास किया है, जैसा शायद संसारके साहित्यमें कहीं देखनेको न मिल सके। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस तत्त्वकी प्राप्ति ही ज्ञान-योगका परम लक्ष्य है। यह तत्त्व वही आत्मतत्त्व है जिसके सम्बन्धमें द्वितीय अध्यायमें ही कहा गया है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

'न आत्माको शस्त्र काट सकते हैं और न आग जला सकती है, न उसे पानी भिगो सकता है और न हवा उसको सुखा सकती है।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीकृष्ण जब अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराते हैं, तब उसमें आत्माकी ये सभी विभूतियाँ भी समाविष्ट रहती हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस रूपके दर्शनसे, इस तत्त्वको हृदयङ्गम करनेसे ही ज्ञानयोगकी परम सिद्धि सम्भव है।

इसीलिये कर्मयोगकी समस्त महत्ताका प्रतिपादन करके भी श्रीकृष्ण अन्तमें ज्ञानयोगका उत्कर्ष दिखलाते हुए कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

'सर्वधर्मोंको, आंशिक महत्त्ववाले कर्तव्योंको त्यागकर मेरी शरणमें आओ; मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा; खेद मत करो।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

'मेरा भक्त बनो, मुझमें अपने मनको लीन करो; मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो। ऐसा करके तुम मुझको ही प्राप्त होगे। मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो।'

गीतामें ज्ञानयोग और कर्मयोगका अद्भुत समन्वय हुआ है पर उसकी ओर हमारे आधुनिक साहित्यकी रुचि नहीं है; आधुनिक कवि, उपन्यासकार, नाटककार आदि अब ज्ञान और कर्मकी विरोधी दिशाएँ इङ्गित करनेमें ही अपनी लेखनीकी कुशलता समझने लगे हैं; किंतु यह हमारा बहुत बड़ा भ्रम है, हमें इस अन्धकारसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये।

समाज-कल्याणका मूलमन्त्र

सहयोगकी भावनाका विकास

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

विश्वमें जितने प्राणी हैं, सभी अकेले—स्वतन्त्ररूपसे ही जन्म लेते हैं और उनमें अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता, विशेषता, गुण, दोष, रूप-रंग, आकृति, ध्वनि आदिकी पृथक्ता भी होती है; पर चैतन्य गुण सबमें समानरूपसे व्यापक रहता है। इसलिये उन असमानताओंमें भी एक समानता रही हुई है। जगत्में नाना प्रकारके कार्य चलते रहते हैं और उनके संचालनमें विविध प्रकारकी शक्तियोंकी आवश्यकता होती है या यों भी कह सकते हैं कि विविध प्राणियोंकी रुचि, स्वभाव, योग्यता आदिसे कार्योंमें भी विभिन्नता दिखायी देती है। पर बहुत-सी बातोंमें, रुचि आदिमें समानता होती है, उनका एक संगठन समाज कहलाता है। व्यक्ति और समाजका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे अन्योन्याश्रित हैं। एकका प्रभाव दूसरेपर पड़ता ही है।

व्यक्तियोंका समूह ही समाज है। बहुत-से काम व्यक्ति भी कर लेते हैं पर जो अकेला एक व्यक्ति नहीं कर पाता, कई व्यक्तियोंका दल जुट जानेपर वैसे बहुत बड़े-बड़े काम भी सरलतासे सम्पन्न हो जाते हैं। समझदारीके साथ एक दूसरेको सहयोग देनेकी भावनासे जो संगठन होता है, वही वास्तवमें 'समाज' की संज्ञा पाता है। अभी समाजके इस दायरेको हमने बहुत सीमित बना रखा है, इसीलिये भिन्न-भिन्न समाज पृथक्-पृथक् टुकड़ोंमें बँटे हुए हैं। आवश्यकता है इन छोटे-छोटे समाजोंके संगठित और एकीकरण होनेकी। हमारी सीमित आत्मीयता या समाजगत भावना क्रमशः विस्तृत होती जाय और ये छोटी-छोटी भेद-रेखाएँ, जो हमारी दृष्टिको संकुचित बनाकर बाधक बन रही हैं, मिट जायँ और फिर न बनें, सारे मानव-समाजकी एकताका ही हमारे सामने एक चित्र हो। जाति, सम्प्रदाय, देशकी दीवारें, हमें अलग-अलग न कर सकें। सब सुखी तो हम सुखी, कोई भी दुखी तो हम दुखी। इस तरहकी भावनाका विकास क्रमशः बढ़ता ही चला जाय। जब समाजके दुःख-कष्टको व्यक्ति अपने दुःख-कष्टके रूपमें अनुभव करता है, तभी स्वस्थ समाजका निर्माण होता है।

समाज अनेक प्रकारके—विभिन्न रुचि-स्वभाववाले व्यक्तियोंका संगठन होता है। उस संगठनको बनाये रखनेके लिये सहिष्णुताकी परमावश्यकता है। जो व्यक्ति अपनी रुचिके प्रतिकूल काम करते हैं, उन्हें भी सहन करना पड़ता है। हम अच्छे विचारोंको उनमें फैलायें और उनका हृदय-परिवर्तन करके उन्हें अपने अनुकूल बना लें। पर किसीपर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जबरदस्ती अपने विचारोंको न लादें; अपने कहे अनुसार ही सब चलें; इस प्रकारकी बाध्यता न की जाय। हिल-मिलकर सब एक दूसरेको जहाँ जिस परिमाणमें सहयोग देना आवश्यक हो और अपने लिये सम्भव हो, सहयोग देकर एक-दूसरेकी समस्या, कठिनाई और दुःखको कम करनेका प्रयत्न करें। यथासम्भव सहारा देकर सबको सुखी बनाने और सबको ऊँचा उठानेका प्रयत्न सभी व्यक्ति करें, तभी समाजका कल्याण सम्भव हो सकता है।

प्रत्येक प्राणीका जीवन एक-दूसरेके सहयोग या अनुग्रहपर ही बहुत कुछ निर्भर है। जन्म एकाकी रहनेपर भी उसके पालन, पोषण-परिवर्द्धनमें माँ और कुटुम्बीजनोंका सहयोग आवश्यक होता ही है और ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं और भी अनेक व्यक्तियोंका सहयोग लेकर या पाकर ही जीवनको सुखी, समृद्ध और उच्चस्तरका बना सकते हैं। यदि कोई किसीको किसी भी प्रकारका सहयोग न दे तो जीवनकी प्रगति रुक जायगी; प्राणी शायद जीवित भी न रह सकेंगे।

जबतक मनुष्यकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं और उनकी पूर्ति प्रकृतिप्रदत्त साधनोंसे सहज हो जाती थी, तबतक सामाजिक संगठन चाहे उतना आवश्यक और बड़े परिमाणका न था, पर जब आवश्यकताएँ बढ़ीं और साधनोंको जुटानेमें काफी प्रयत्न करना आवश्यक हो गया, तब अकेले व्यक्तिको कठिनाई होने लगी। इसीलिये परिवार-प्रथाका विकास हुआ और क्रमशः उसका दायरा बढ़ते-बढ़ते समाजका निर्माण हुआ। फिर भी प्राचीनकालमें यातायातके साधन बहुत सीमित थे; अतः देश, राष्ट्र, विश्वसे सम्बन्ध जोड़ने और सहयोग देनेका प्रयत्न आज-जैसा सम्भव न था; परंतु धर्मके द्वारा मनुष्यने समस्त जीवजगत्की मङ्गलकामनाकी व्यापक भावना पायी और अहिंसा या प्रेम-धर्मके विकासने एक शान्तिपूर्ण वातावरणकी सृष्टि कर दी। समस्त जीवोंमें, जो एक-से चैतन्यका विकास है, इस तत्त्वदर्शनने मनुष्यको एक नयी दृष्टि दी। ससीमकी ओरसे असीमकी ओर बढ़ता हुआ मानव परमात्मा या परमशक्तिके पदतक पहुँच गया। महात्माओंने उस व्यापक चैतन्यकी अनुभूतिके द्वारा संकुचित दृष्टि सीमा-भेद मिटा दिये और किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका कष्ट न पहुँचाया जाय; ऐसी 'अहिंसा' भावनाको धर्मका प्रधान अङ्ग ठहरा दिया तथा प्रेमके लचीले धागेसे सारे विश्वके प्राणियोंको एक सूत्रमें बाँध दिया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसी विश्व-प्रेमका परिचायक महान् सूत्र है।

प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंके पारस्परिक सहयोगकी आवश्यकता प्रतिपल और भलीभाँति अनुभव करता है। पारस्परिक सहयोगसे काम अधिक और सुन्दर होता है। एक ही कामको सम्पन्न करनेके लिये अनेक प्रकारके साधन जुटाने पड़ते हैं और प्रत्येक व्यक्ति ही यदि इन सब साधनोंको जुटाने जाय तो उसका सीमित जीवन उनके जुटानेमें ही समाप्त हो जायगा। जुटानेके बाद जो काम करनेकी भावना है, वह हो ही नहीं सकेगा। मान लीजिये एक ही मनुष्य अपने खाने, पहनने, ओढ़ने आदि जीवनकी प्रत्येक आवश्यकताकी सामग्री मूलरूपसे लेकर अन्तिम परिणतितक स्वयं ही तैयार करनेका प्रयत्न करे तो उसे कितने लंबे समय और श्रमका भोग देना होगा। पर विविध व्यक्ति विविध प्रकारके काम करते रहते हैं, इसलिये विविध प्रकारकी सामग्री सहज ही प्रचुर मात्रामें मिल जाती है। इससे सभीकी कठिनाइयोंका हल हो जाता है। एक खेतीके कामको ही लें, उसमें भी कितने व्यक्तियों और कितने व्यक्तियोंके निर्मित साधनोंका उपयोग करना पड़ता है। जिस प्रकार आज अलग-अलग परिवारकी अपनी खेती होती है, यदि वह सामूहिक रूपसे अधिक परिवारोंकी या सारे गाँवकी एक साथ होने लगे तो अवश्य ही सब काम बाँटकर सभी लोग श्रम करेंगे तो थोड़े समय और श्रमसे अधिक और अच्छा उत्पादन किया जा सकेगा।

बहुत-से व्यक्ति जब एक साथ मिलते हैं, तब उनमेंसे प्रत्येकमें जो अलग-अलग प्रकारकी योग्यता है और जिसकी प्रत्येक काममें आवश्यकता होती है; वे शक्तियाँ एक साथ जुट जाती हैं और काम सुगमतासे हो जाता है। किसी काममें शारीरिक बल अधिक आवश्यक होता है तो किसीमें बुद्धिबल। यदि प्रखर बुद्धि और सशक्त मनुष्य परस्पर मिलकर काम करेंगे तो जहाँ जिसकी जिस रूपमें आवश्यकता होगी, उसकी पूर्ति दोनोंके सहयोगद्वारा होती रहेगी। इतना ही नहीं, दो या अधिक व्यक्तियोंके मिलनेपर विचार-विनिमयके द्वारा नये-नये तरीके, जिनके द्वारा काम और भी अधिक सुगमतासे और अच्छा हो सकता है, सोचनेकी सुविधा हो जायगी। एककी कमीकी पूर्ति दूसरेसे होगी ही, पर उस कामकी त्रुटियोंका भान भी दूसरेसे सहजहीमें होता जायगा। बहुत बार अपनी दृष्टि और बुद्धिमें तो मनुष्य काम ठीक ही करता है, पर कई बारीक बातें उसके ध्यानमें न आनेसे उसे इच्छानुरूप सफलता नहीं मिलती। यह अपनी कमी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मनुष्यको सहजहीमें कम ध्यान आती है। अतः दूसरे सहयोगी-द्वारा इस कमीको जानकर वह शीघ्र ही उचित सुधार कर सकता है और मनचाहा फल प्राप्त कर सकता है।

साधारणतया एक और एक (१ + १) के मिलनेपर दो (२) होंगे, कहा जाता है; पर वास्तवमें एकके आगे एक, इस प्रकार जोड़नेसे संख्या दो की न होकर ग्यारह (११) की हो जाती है। इसी तरह जितनी भी एक-एक संख्या और जोड़ते जायँगे, संख्याका धनत्व दसगुनेसे सौ गुना, हजार गुना, लाख-करोड़ गुना बढ़ता ही चला जायगा। इसी तरह व्यक्तियों-के संगठनमें भी अपार शक्ति है। सहयोगकी भावनासे जितने अधिक व्यक्ति एक साथ जुटेंगे, उनकी आवाज और शक्ति उतनी ही प्रबल होगी। यदि सभी अपनी-अपनी डफली अलग-अलग बजाते रहेंगे तो परस्पर संघर्ष होगा और उससे तो विनाश ही होगा। सबकी शक्तियोंका परस्पर टकराना, खण्ड-खण्ड ही करनेवाला होता है जब कि शक्तियोंका मिलन महान् कार्यवाही होता है।

प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनेको ही सुखी एवं समृद्ध बनानेमें लगा रहेगा तो थोड़े समयके लिये वह दूसरोंसे ऊँचा उठ गया, कह सकता है; पर वह भी वास्तवमें दूसरोंके सहयोगसे ही आगे बढ़ता है; पर जो दूसरोंका शोषण कर उनको दुर्बल और दरिद्र बनाकर दुखी बनाता है, उस व्यक्तिका सुख अधिक दिन टिक नहीं सकता; क्योंकि सब दिन सबकी परिस्थिति एक-सी नहीं रहती। शोषित और दलित व्यक्तियोंकी आहें अवश्य ही एक दिन उसे ऊँचे महलसे नीचे गिरा ही देंगी। व्यक्ति स्वयं सुखी हो और दूसरोंको सुखी बनाये, इसीमें उसका कल्याण और उसके जीवनकी सार्थकता है। पर आज हो यह रहा है कि व्यक्तिको अपनी ही चिन्ता अधिक है। पड़ोसी और समाजकी कुछ भी परवा नहीं, वे चाहे भूखों मर जायँ, कष्टसे दिन बितायें, रोगसे पीड़ित हों, आपदाओंसे घिरे रहें; पर व्यक्ति अपने सुखके लिये ही साधन जुटाता रहता है। दूसरे या पड़ोसीका चाहे इसमें कितना ही विनाश हो जाय; प्राप्त साधनोंको वह दूसरोंके हितके लिये उपयोगमें नहीं लाता। इसीलिये आज समाजकी यह हालत है कि अन्नके अभाव और उपयुक्त काम न मिलनेसे लोग अपनी और परिवारकी हत्या तक करनेको बाध्य होते हैं, जबकि उसी दुखी व्यक्तिका पड़ोसी या गाँवके लोग चैनकी बाँसुरी बजाते रहते हैं। वे आवश्यकतासे अधिक आनन्दित जीवन-निर्वाहके उपयोगी साधनोंको जुटाकर आनन्द लूटते हैं। यदि उनमें सहयोगिता-की भावनाका विकास हो तो कभी कोई व्यक्ति भूखों नहीं मर सकता। मान लीजिये दो रोटी ही एक व्यक्तिके पास है और वह परिवारके सब लोगोंको बाँटकर खाता है तो सभी जीवित रह सकते हैं, पर यदि उन्हें वह अकेला खा जाय तो दूसरे भूखों मरेंगे ही। आखिर वस्तुओंका एकदम अभाव तो होता ही नहीं है। पर एक व्यक्तिके आवश्यकतासे अधिक संग्रह कर लेनेके कारण दूसरेके लिये वह दुर्लभ हो जाती है। यदि सहयोगकी भावना हो तो जो भी थोड़े साधन हैं, उन सबको मिलकर बाँटकर काममें लायेंगे। आज एक व्यक्तिके पास अन्नकी कमी है, दूसरेके घरमें भंडार भरे पड़े हैं, यदि वह उस व्यक्तिको अपना ही अङ्ग समझकर आवश्यक अन्नादि दे दे तो वह जीवित रहकर अवश्य ही मौका मिलनेपर उसका बदला अच्छे रूपमें चुकायेगा और न भी चुका सका तो मानवता भी तो यही है। यदि कल देनेवालेकी स्थिति खराब हो गयी और लेनेवालेकी अच्छी हो गयी तो अवश्य ही लेनेवाला, देनेवालेकी मदद करेगा ही। हमारे धर्मनेताओं-ने इसीलिये दान, सेवा, परोपकारको धर्मका प्रधान अङ्ग बनाकर मानवके करुणा, कोमलता, उदारता और प्रेमभावको विकसित किया है। इनके विकाससे ही सबका कल्याण होता है।

जीवनके प्रत्येक कामको पारस्परिक सहयोगसे सफल और सुन्दर बनाया जा सकता है, थोड़े समय और श्रमसे अधिक और अच्छे काम हो सकते हैं, समय और श्रमकी बहुत बड़ी बचत हो सकती है और उस शक्तिको अन्य कामोंमें लगानेसे उत्पादन, समृद्धि, शान्ति और सुख बढ़ता है ही। समय एवं श्रमकी बचत जीवनको सार्थक बनानेमें बहुत सफलता दे सकती है।

अपने शरीरको ही लें, उसके जितने अङ्ग हैं, सबका अपना उपयोग है, महत्त्व है। सब अङ्ग एक दूसरेको सहयोग देकर काम करते हैं, वहींतक यह शरीररूपी मशीन ठीकसे और इच्छित काम कर सकती है। यदि हमारे अङ्ग एक दूसरेको सहयोग देना बंद कर दें तो कितनी कठिनाई होगी, जीवन दूभर हो जायगा। इसी तरह सभी प्रकारकी मशीनें अनेक प्रकारके पुर्जोंके सहयोगसे ही चलती और कार्य सम्पन्न करती हैं। अकेला व्यक्ति ऊब जाता है, निराश और हताश हो जाता है। कामको छोड़ बैठता है; एकसे दूसरा मिलते ही आनन्द-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

का अनुभव होने लगता है। यदि उसका सहयोग विचार-विनिमय या प्रवृत्तिमें तनिक भी मिल जाय तो इसका अटका या रुका हुआ काम आगे बढ़ जाता है।

सहयोग तो एक दूसरेको आज भी देते हैं या देना पड़ता है, पर उसमें स्वार्थकी मात्रा बहुत अधिक बढ़ी हुई है। जहाँतक अपना स्वार्थ हुआ, दूसरेको सहयोग दिया; पर दूसरेका काम हुआ तो सहयोग नहीं दिया जाता। मनुष्य लेना अधिक जानता है, देना नहीं। वास्तवमें यह कृतघ्नता ही है। देना अधिक और लेना कुछ नहीं, यही भारतीय संस्कृतिका आदर्श है। दूसरेसे किसी भी प्रकारकी वस्तु कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक देना, यही संतोंका सहज धर्म है। संतलोग अपने जीवनकी आवश्यकताओंको बहुत ही घटाकर समाजसे कम-से-कम लेते हैं और अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंका कल्याण हो, इसके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। व्यक्ति एवं समाजके दोषों एवं दुर्गुणोंको कम और दूर करके उनमें सात्त्विक गुणोंका अधिकाधिक विकास करना ही उनके जीवनका लक्ष्य बन जाता है। वे अपने जीवनको सबके लिये तथा सबके कल्याणमें ही अपना कल्याण समझते हैं, अपने स्वार्थके लिये मनुष्य समाजका हित नहीं देखता, यही वर्तमान युगकी सबसे बड़ी खराबी है। पूर्वकालमें व्यक्तिपर समाजका अङ्कुश सदा लगा रहता था। यद्यपि वह समाज अपनी जाति और धर्मतक ही सीमित था, फिर भी मनुष्य ऐसा कोई काम नहीं करता, जिससे समाजकी हानि हो। उसे नीचा देखना पड़े। एक बुरा मनुष्य या उसका कृत्य सारे समाजको बरबाद कर डालता है; क्योंकि साधारणतया लोग अन्धानुकरण ही अधिक करते हैं और अवगुणोंकी ओर मानवकी प्रवृत्ति सहज ही हो जाती है। अतः व्यक्ति सदा यह ध्यान रखकर व्यवहार करे कि उसके किसी भी आचार-व्यवहार और प्रवृत्तिसे समाजका अहित न हो, समाज बदनाम न हो।

व्यक्ति स्वयं संयमसे रहे और अपनी शक्ति, सम्पदा और समयको दूसरोंकी भलाईमें लगाता रहे। सेवा या त्याग ही उसका आदर्श हो। जन्मसे लेकर सारी जिंदगी वह किसी-न-किसी रूपमें दूसरोंसे, समाजसे उपकृत होता रहा है। उसने जो कुछ अर्जन किया है, उसमें अपने श्रमके साथ-साथ समाजके सहयोगका भी बड़ा हाथ रहा है, अतः उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह समाजकी सेवा करे एवं एक दूसरेको सहयोग देकर अपने ऋणका परिशोध करे। समाजको ऊँचा उठाने और उसके दुःख तथा अभावोंको मिटानेमें अपना उत्सर्ग कर दे।

समाजके संकुचित दायरेको हम विस्तृत करें। सदा मानव-समाज एक है, इससे भी आगे बढ़कर सारे प्राणीमात्र हमारा ही चेतन-समाज है। सबके कल्याणकी भावना और प्रकृति हो, यही भारतीय आदर्श है। हम सब यथासम्भव इसी आदर्शको जीवनमें प्रतिष्ठित करें।

तुम्हीं मेरे सर्वस्व !

प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना जगमें है कौन मेरा ?
तुम्हारे ही स्नेहने मुझको है सब ओर घेरा ॥
किसीमें, कहीं भी, कैसे भी, न लगता चित्त मेरा।
पा लिया मैंने बस, तुम्हारे चरणोंमें ही डेरा ॥
तुम्हीं मेरे हो सर्वस्व, और कोई नहिं मेरा।
न भोग, न लोक, न परलोक, न घर, न रैनबसेरा ॥
तुम्हारा रूप, नाम व गुण ही है परम धन मेरा।
तुम-सा न पाया कहीं, कोई भी, खोजा घनेरा ॥
बसे रहो सुखसे नित्य, तुम्हारा घर है मन मेरा।
बसूँ मैं भी सदा तुममें, न कुछ रहे मेरा-तेरा ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मूर्तिमान् परोपकार

[कहानी]

(लेखक—स्वामीजी श्रीपारसनाथजी सरस्वती)

वह आपादमस्तक गंदा आदमी था। मैली धोती और फटा हुआ कुर्ता उसका परिधान था। सिरपर कपड़ेकी एक पुरानी गोल टोपी लगाता था, जिसमें एक सूराख भी था। उसकी कमर कमान बन गयी थी। बाल चाँदी और मुँह वेदान्ती। चेहरेपर झुर्रियाँ थीं। दो भूरी आँखें गहरे गड्ढोंमेंसे झाँकती थीं। उसके शरीरकी हड्डियाँ और नसें उभरी हुई थीं। कहीं-कहीं मांस सिकुड़कर लटक गया था।

स्कूलके सामनेवाली झोंपड़ीमें उसने एक छोटी-सी दूकान बना रक्खी थी। जहाँसे बच्चोंको स्याही, कलम, पेंसिल, कापी आदि छोटी-छोटी चीजें प्राप्त हो जाया करती थीं। उसी दूकानसे उसका जीवन-निर्वाह होता था। सुना जाता था कि उसके पास कुछ खेती भी थी और वह एक गाँवमें रहता था। उसके लड़कोंने खेती छीन ली थी और उसे घरसे निकाल दिया था। उसने भी कभी अच्छे दिन देखे थे। अब तो वह किसी प्रकार जीवनके दिन पूरे कर रहा था।

सभ्यताके नाते, मैं उस गंदे और गरीब आदमीको 'बाबाजी' कहा करता था। वास्तवमें मुझे उसकी सूरतसे, चाल-ढालसे और उसकी बोल-चालसे अत्यन्त घृणा थी। हाथमें एक चिलम लिये, जिसमें एक छोटा-सा चीमटा बँधा रहता था, जब शामको वह धीरे-धीरे चलता हुआ मेरे पास स्कूलमें आता था, तब मैं अपने मनमें उसे कई दर्जन गालियाँ दिया करता था।

कई बार मैं ऐसी हरकतें करता, जिससे वह स्कूलके चबूतरेपर बैठकर चिलम पीना और खाँसना छोड़ दे। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे पास आया करे। जब वह आकर बैठता, तब मैं उठकर अलहदा टहलने लगता था। जब वह मुझसे बातें करने लगता, तब मैं कोई किताब पढ़ने लगता। मगर मेरी इस बेज़ारीका कोई असर उसपर नहीं पड़ता था। जहाँ शाम हुई और वह चिलम लेकर आ बैठा। कभी-कभी कहता—

'मास्टर साहबने रोटी तो बना ली होगी ?'

'हाँ—बना ली।'

'सब्जी क्या बनायी थी ?'

'आलू बनाये थे।'

'थोड़ी सब्जी बची भी होगी ?'

इस प्रकार वह रोज़ाना मुझसे कुछ सब्जी या दाल ले लिया करता था, फिर एक काले रूमालमें बँधे दो बाजरेके टिक्कर निकालता और बैठकर खाने लगता। यह देखकर मेरा जी जल उठता। गंदे कपड़े, गंदी रोटियाँ और खानेका गंदा तरीका। वह यह तो जानता ही न था कि सफाई क्या वस्तु होती है, उस बूढ़ेने मेरा जीवन दूभर कर डाला था। जितना खून रोज़ाना बनता था, उससे दूना जल जाता था। उसे स्कूलमें आनेसे कैसे रोकूँ, यही चिन्ता मुझे दिन-रात सताती रहती थी। अन्तमें एक दिन मैंने एक तरकीब निकाली। शामको जब वह स्कूलके चबूतरेपर आकर बैठा, तब मैं गरजकर बोला—

'बाबाजी! कल शामको जब तुम आये थे, तब मेजपर दस रुपयेका एक नोट रक्खा था।'

'ना महाराज! मुझे तो पता नहीं।' हाथ जोड़कर रुआसे स्वरमें उसने उत्तर दिया।

'इस हाथ जोड़कर गिड़गिड़ानेसे, तुम यह साबित नहीं कर सकते कि तुमने नोट नहीं उठाया। मैं तुम-सरीखे नीच लोगोंको खूब पहचानता हूँ।'

'पहचानते होगे—महाराज! भगवान् जाने जो मैंने वह नोट देखा भी हो।'

'बगला भगतोंवाली बातें छोड़ो। अगर तुम बुरे न होते तो तुम्हारे लड़के तुमको घरसे क्यों निकालते? कमीना कहाँ-का—भाग जा यहाँसे—खबरदार जो फिर कभी इधरका रुख किया।'

वह मेरी तरफ देखता हुआ, चिलम उठाकर चल दिया। मैंने उसका चेहरा देखा। वहाँपर दिल हिला देनेवाला एक दुखी दिखलायी पड़ा। उसका दिल टूट गया था। उसकी आँखें कह रही थीं—'मैं गरीब हूँ—असहाय हूँ—निर्बल हूँ—परंतु इतना नीच नहीं हूँ कि किसीकी चोरी करूँ।'

× × ×

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उस दिनसे उसका आना-जाना बंद हो गया। बोलचाल-का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस तरहसे मेरे दिन आरामसे कटने लगे। दिल-दिमागकी बेचैनी खतम हो गयी। मैं प्रसन्न रहने लगा।

कुछ दिनों बाद वर्षाऋतु शुरू हो गयी। प्रायः प्रतिदिन रातको वर्षा होने लगी। खैर; कोई बात नहीं। वर्षाऋतुमें वर्षा तो होगी ही। परंतु एक रातको तो वर्षाने सीमा तोड़ दी। संध्या-समयसे जो वर्षा शुरू हुई तो थमनेका नाम ही न लिया। मैंने जल्दीसे भोजन बनाया और स्कूलके बरामदेमें चारपाईपर लेट गया। नींद नहीं आ रही थी। तीन घंटे बीत गये, परंतु वर्षा समाप्त न हुई। न मालूम क्यों आज पहली बार मुझे भय लगा। वर्षाके शोरके अलावा कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। उस स्कूलसे गाँव आधा मील दूर था। न तो किसी आदमीकी आवाज़ सुनायी पड़ती थी और न कोई रोशनी ही दृष्टिगोचर हो रही थी। कुत्ते भी नहीं भौंक रहे थे। चारों तरफ घोर सन्नाटा छाया हुआ था। झींगुरोंकी झाँझ बज रही थी, मेढकोंका तबला बज रहा था और बरसात झमाझम नाच रही थी। केवल बाबाजीकी झोंपड़ी अवश्य सामने थी परंतु, शायद आज वह भी सबेरे सो गया था। खाँसनेकी भी आवाज़ नहीं आ रही थी।

मुझे जो भयका वातावरण घेरे हुए था, वह अकारण न था, थोड़ी देर बाद जब मैं लघुशंकाके लिये उठकर चारपाई-से नीचे उतरा तो मेरी चीख़ निकल गयी। मैं उछलकर चारपाईपर जा बैठा। मेरा हृदय जोर-जोरसे धक-धक करने लगा। चारपाईके नीचे एक साँप लेटा हुआ था। मैंने तकियेके नीचेसे दियासलाई निकाली। वह सरदी खा गयी थी। कई तीलियाँ रगड़ीं परंतु वह जली नहीं।

लाचारीसे मैंने जोरसे दूसरी चीख मारी। शायद बाबा-जीने सुनी हो। परंतु वह बेचारा मेरी सहायताके लिये क्यों आने लगा?

करता क्या न करता? मैंने भगवान्‌का नाम लिया। हिम्मत बाँधकर, चारपाईके सिरहानेसे उतरकर कमरेमें गया। बक्समेंसे नयी दियासलाई निकाली और लालटेन जलायी। एक हाथमें लाठी और दूसरे हाथमें लालटेन लेकर बाहर निकला। परंतु साँप गायब था। मैं लालटेन फर्शपर रखकर चारपाईपर बैठ गया। परंतु भयके कारण हृदय काँप रहा था। उधर वर्षाने और भी जोर पकड़ रक्खा था। क्षण क्षणमें बिजली चमक रही थी। बादल भी खूब गरज रहे थे, अन्तमें सोच-विचारकर शर्मको एक तरफ रखकर लालटेन उठायी और मैं लाठी लिये हुए बाबाजीकी झोंपड़ीके सामने जा खड़ा हुआ। मैंने धीरेसे पुकारा—'बाबाजी!'

परंतु—कोई उत्तर न मिला।

बाबाजी-बाबाजी, लगातार जोरसे मैंने दूसरी और तीसरी आवाज़ लगायी। शायद बाबाजी गहरी नींदमें सो रहे थे। फिर मुझे यह भी विचार आया कि कहीं किसी साँपने, उसे काट न खाया हो—चटाईपर जमीनपर सोता था बेचारा, परंतु यह असम्भव था; क्योंकि वह एक माना हुआ सँपेरा था। तब मैंने जोरसे झोंपड़ीका दरवाज़ा खटखटाया। अंदर-से आवाज आयी—

'कौन है?'

'मैं हूँ।'

'कौन! मास्टरजी?'

'हाँ।'

'क्या बात है?' बाहर आकर वह बोला।

'मुझे वहाँ डर लगता है। तुम वहाँ चलो।'

'कहाँ चलूँ?'

'स्कूलमें।'

'क्यों?'

'अभी-अभी एक भयानक साँप, मेरी चारपाईके नीचे लेटा था।'

'ना, महाराज! मैं स्कूलमें नहीं जाता। मैं तो चोर हूँ।'

'बाबाजी! वह बात और ही थी। मुझे मुसीबतसे बचाओ।'

'चले जाओ—यहाँसे!' उसने गरजकर कहा।

मैं निराश होकर लौट चला। मुझे बाबाजीपर बड़ा क्रोध आ रहा था। सहसा वह बोला—'मास्टरजी! ज़रा सुनो तो।'

मैंने सोचा कि दयालु भगवान्‌ने उसके दिलमें दया भर दी है। मैं लौटकर उसके पास जा खड़ा हुआ। वह बोला—

'कितना बड़ा साँप था?'

'होगा कोई दो गज़ लम्बा!'

हूँ'—कहकर उसने मुँह फेर लिया।

'हूँ—क्या बाबाजी?' मैंने नम्रतासे पूछा।

'कुछ नहीं। कोड़िया नाग होगा। उसका काटा पानी नहीं माँगता।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'तो फिर ?' मैंने गिड़गिड़ाकर कहा ।

'तो फिर मैं क्या करूँ ? तुम जाओ ।' उसकी जीभ लड़खड़ा रही थी ।

मुझे बड़ी निराशा हुई । उसने वापस बुलाकर मेरा भय और भी बढ़ा दिया था । मैंने सोचा कि इस बूढ़ेका शरीर जितना गंदा है, उससे भी ज्यादा इसका मन गंदा है । मेरे जीमें आया कि इस स्वार्थी बूढ़ेकी गरदन मरोड़ दूँ ।

मैं फिर मुड़ा । उसका चेहरा देखा तो उसके आँसू बह रहे थे । मैं पश्चात्तापकी आगमें जलने लगा । वह कठोर हृदय न था—भावुक हृदय था । मैंने पास जाकर कहा—'मुझे क्षमा करो—बाबाजी ! मैंने चोरीकी बात झूठ कही थी ।' मेरी आवाज आँसुओंमें डूब गयी ।

'रोते हो मास्टरजी ! भला, इसमें तुम्हारा क्या अपराध ! जब मेरे लड़कोंने ही मुझे घरसे निकाल दिया, तब दूसरोंकी क्या शिकायत ? अपना-अपना भाग्य है—बाबू !' उसने चुपकेसे अपने आँसू पोंछ लिये ।

'नहीं बाबाजी ! मैं बड़ा पापी हूँ ।' मेरी हिचकी बँध गयी ।

'पागल हो गये हो—मास्टरजी !'

वह बातें करता हुआ मेरे साथ स्कूलमें आ गया । काफी देरतक बैठा-बैठा मुझे साँपोंके किस्से सुनाता रहा । अन्तमें वह बोला—

'कितना ही जहरीला साँप हो, मैं उसे हाथसे पकड़ सकता हूँ ।'

'तो साँप काटेका मन्त्र भी है—आपके पास—बाबाजी !'

'मन्त्र होता तो है—मास्टरजी ! परंतु मुझे मालूम नहीं । मैं तो मुँहसे चूसकर जहर बाहर निकाल देता हूँ ।'

'मुँहसे ? और जहर तुमपर असर नहीं करता ?'

बाबाजीने हँसकर उत्तर दिया—'असर अवश्य करता है—बाबू ! परंतु, उसके लिये मेरे पास एक दवा है । झोंपड़ीमें एक काली-सी बोतल रक्खी है । उसमें एक बूटीका अर्क भरा है । जहर चूसकर उसे थूक देता हूँ और उस अर्कसे तुरंत दो कुल्ले कर डालता हूँ । फिर कोई असर नहीं होता । जब मैं किसीका जहर खींचने जाता हूँ, तब वह काली बोतल साथ लेता जाता हूँ ।'

बातें करते-ही-करते बाबाजी वहीं फर्शपर लेट गये और तुरंत सो गये । उनकी नाक बजने लगी । परंतु मुझे नींद कहाँ ! चारपाईपर करवटें बदलते-बदलते काफी देर हो गयी । मुझे प्यास लग आयी । पानीका घड़ा कमरेके अंदर था । साँपके डरसे एक बार फिर कलेजा काँप गया । लेकिन यह सोचकर साहस बाँधा कि बाबाजी तो पास ही हैं । मैं पानी पीनेके लिये उठा । चारपाईसे उतरकर जूता पहिना । लेकिन यह क्या ? पैरपर मानो किसीने जलता हुआ अँगारा रख दिया । उसी साँपने कहींसे आकर मेरे पैरमें जोरसे डँस लिया था । मेरी आत्माने कहा—'तुमने चोरीका मिथ्या दोष लगाकर बाबाजीका दिल बेकार दुखाया था; उसका बदला महामायाने ले लिया । दिल दुखानेकी सजा बड़ी भयानक होती है; क्योंकि दिलमें दिलदारका निवास होता है !'

इसके बाद मैं बेहोश हो गया ।

× × ×

जब मैं होशमें आया तो धूप फैल रही थी । आकाश साफ था । मेरे आस-पास स्कूली बच्चोंका और कुछ किसानोंका जमाव था । स्कूलके आस-पास जिनके खेत थे, वे किसान लोग जमा थे । मेरा सिर घूम रहा था । निर्बलताके कारण उठा नहीं जाता था । पैरमें अब भी कुछ जलन हो रही थी । मैंने किसानोंसे पूछा—'बाबाजी कहाँ हैं ?'

'बाबाजी, भगवान्‌जीके पास पहुँच गये !' एक किसान बोला ।

'कैसे क्या हुआ—!' मैंने अचकचाकर पूछा ।

वही किसान कहने लगा—'सुबह जब लड़के स्कूल आ रहे थे तो उनकी लाश झोंपड़ीके पास पड़ी मिली । जहरसे सारा शरीर नीला पड़ गया था । जीभ सूजकर बाहर निकल आयी थी । मालूम होता है कि रातमें आपको साँपने काटा था । बाबाजीने जहर खींच लिया । परंतु दवाकी बोतल झोंपड़ीमें थी । वहाँतक जाते-जाते जहर अपना काम कर गया !'

'बेशक मुझे साँपने काटा था । लेकिन उनको चाहिये था कि बोतल ले आकर जहर खींचते !' मैंने कहा ।

'तबतक आप मर भी जाते—मास्टरजी !' वही किसान बोला । मैं फिर बेहोश हो गया ।

× × ×

मैंने बाबाजीकी लाश जलायी । उस स्थानपर पक्का चबूतरा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बनवा दिया। वहाँ एक पत्थर लगवा दिया जिसपर लिखा था—

"मूर्तिमान् परोपकारी बाबाजी,

जिनको मैंने झूठी चोरी लगायी थी। पर जिन्होंने मेरे पैरका जहर खींचकर अपने प्राण दे दिये। इसे बलिदानकी पराकाष्ठा कह सकते हैं। परमात्मा उनकी आत्माको शान्ति दें। किसीका शरीर गंदा देखकर यह नहीं सोचना चाहिये कि उसका हृदय भी गंदा होगा" मास्टरजी!

जीवनकी मूलभित्ति

(लेखक—श्रीलावेल फिल्मोर)

यदि कोई व्यक्ति हमारे परिवारके सदस्योंकी या हमारी राजनीतिकी अथवा हमारे पहनावेकी आलोचना करता है तो हमें उस आलोचनाका प्रभाव अपने ऊपर नहीं होने देना चाहिये। यदि हम अपने मनका संतुलन एवं शान्ति बनाये रहें तो इस प्रकारकी आलोचनाएँ हमें स्पर्श नहीं कर सकेंगी। अन्य द्वारा की गयी आलोचनासे क्रोधित हो उठना, उत्तेजनामें आ जाना अथवा दुखी हो जाना किसी भी रूपमें हमारी स्थितिको सुधार नहीं सकता और न हम अपनेको अच्छी परिस्थितिमें अनुभव कर सकते हैं। इसके विपरीत, यदि हम आलोचकको उसकी आलोचनाके लिये क्षमा कर दें, या उसके शब्दोंको सर्वथा भूल जायँ और उसके प्रति शुभभाव जाग्रत् करें तो हम भगवान्‌की महान् संनिधिकी महत्त्वपूर्ण चेतनाके साथ तादात्म्य बनाये रख सकते हैं।

यदि वर्तमान जगत् आपकी रुचिके अनुकूल नहीं है तो अभीसे एक सुन्दर जगत्‌के निर्माणका कार्य सच्चे रूपमें आरम्भ कीजिये। भगवान्‌को इसकी आधारभित्ति बनाइये, इससे आपको सुन्दर जगत्‌के निर्माणका ढंग स्वतः ज्ञात होगा। आपको दिन-प्रति-दिन यह अनुभव होगा कि आप सचमुच कितने सुन्दर जगत्‌में रह रहे हैं, परंतु आपने कभी इसको ठीकसे समझा नहीं।

हमारी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी तथा सच्चे अर्थमें जीवनका सुन्दरसे सुन्दर उपयोग करनेकी सुनिश्चित पद्धति यह है कि हम प्राप्त परिस्थितियोंकी प्रशंसा करें एवं उनके प्रति शुभ भावना करें। साथ ही हम दूसरोंकी अच्छाइयोंके प्रति कृतज्ञ होनेमें कभी न चूकें।

भगवान् यह कभी नहीं चाहते कि आप कष्टमें पड़े रहें, भयभीत हों, अथवा विषादके शिकार बने रहें। भगवान् पूर्ण प्रेमस्वरूप हैं। पूर्ण प्रेम सम्पूर्ण भयोंको निर्मूल कर देता है। पूर्ण प्रेम हमारी प्रत्येक आवश्यकताकी पूर्ति करता है। भगवान् आपके लिये आवश्यक शुभ आपके चाहनेके पूर्व ही आपको दिये हुए हैं।

हम इस लक्ष्यतक पहुँचनेसे वञ्चित रह जाते हैं; क्योंकि हम इस ओर दृष्टि ही नहीं करते। जिसकी लक्ष्यकी ओर दृष्टि नहीं है, वह उसका भेदन कैसे कर सकता है? लक्ष्य यह है—भगवान्‌की संतान होनेके नाते हम भी भगवदीय हैं और भगवान्‌के अंश होनेसे हम प्रेमी, दयालु, ईमानदार, सुखी, समृद्ध, स्वस्थ एवं विवेकी हैं।

प्रत्येक व्यक्ति वास्तवमें केवल शुभकी खोजमें है; किंतु कुछ व्यक्ति यह भूलकर कि शुभकी अभिलाषाका विकृतरूप ही तुच्छ वस्तुओंकी कामनाके रूपमें व्यक्त होता है, ऐसा सोचा करते हैं कि शुभमें रोचकता नहीं। वे अपनी कामनाओंकी तहमें ठीकसे पहुँच ही नहीं पाते। शुभके अतिरिक्त और किसी भी वस्तुसे उनकी कभी तृप्ति नहीं हो सकेगी।

भयने कभी किसीको समृद्धिशाली नहीं बनाया। साहस एवं प्रेमने अनेकोंको समृद्धिमान् बनाया है।

निरन्तर प्रसन्नमुख रहनेसे मनुष्य आशावादी बनता है और आशावादी बड़ा सुखी होता है।

आप भगवान्‌के अंश हैं, आप भगवान्‌को उतने ही प्यारे हैं, जितना कि पौराणिक आख्यानमें आवारा पुत्र पिताको प्यारा था। जब वह घर लौटा, तब उसके पिता भुजा भरकर उससे मिले और उनके पास जो भी अच्छी वस्तुएँ थीं, उन सबमें उसका हिस्सा रहा। हम भी अपने पिताके घर कैसे लौटें? इसका उपाय है—हम अपनी दृष्टिको घृणा, द्वेष, लोभ, भय, काम और संदेहसे हटाकर परमपिता परमात्माके प्रेमसे सराबोर करें।

हम इस संसारमें रहनेके लिये और यह सिद्ध कर देनेके लिये हैं कि हम भगवान्‌की संतान हैं, सर्वोत्कृष्टकी आशा न कर सदा अर्धमृतकी भाँति निकृष्टसे भयभीत रहकर अधम जीवन बितानेके लिये नहीं। (अनुवादित)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एक प्राण दो शरीर

[कहानी]

(लेखक—श्रीआचार्य सर्वे)

यह कहानी वहाँसे शुरू होती है जहाँसे आत्माओंकी सीमाओंका आरम्भ होता है ।

बहुत पुराने समयकी बात है जब कि पाप अभी सो रहा था, एक युवक और एक युवती जो एक-दूसरेको पति और पत्नीके रूपमें जानते थे, अपनी छोटी-सी गृहस्थीकी बैलगाड़ीपर जीवनके अन्तिम पड़ावतक पहुँच गये थे । उन्होंने देखा कि सामने उत्तरका काला पहाड़ था । जिसके हिमस्नात शिखरोंपर व्यभिचार और हिंसाके काले धब्बोंवाली मृत्यु-बालाएँ द्रुतगतिसे नृत्य कर रही थीं । पीछेकी ओर छूटे हुए उत्तप्त भूखण्डमें राखके अनेकों ढेरोंके अलावा और कुछ न बचा था । पीछे लौटना व्यर्थ था, आगे मौत थी और फिर भी, उनकी बैलगाड़ी किसी अव्यक्त शक्तिद्वारा खिंची-सी चली जाती रही ।

अन्तिम क्षण आ पहुँचा । दोनोंने एक-दूसरेकी ओर पूर्ण-प्रणयसे निहारा और पुनः उनके शीश किसी अनन्त शक्तिके प्रति सदाके लिये नत हो गये । यही वह 'आदि-युगल' था जिसने कि विश्वमें सबसे पहले आजीवन साथ रहनेका व्रत लेकर विवाहित जीवनका श्रीगणेश किया था ।

अगले सुबह—

हिमालयकी तराईमें प्रतिदिवसकी भाँति 'नया-विहान' जाग उठा था । चिड़ियाँ चहचहा रही थीं । ऊँची-ऊँची बर्फीली चोटियोंकी परछाइयाँ सुनील जल-राशिपर तैर रही थीं । उनके हिमानी-शिखर टूट-टूटकर फिसल रहे थे । प्रपातोंके तटोंपर उगे हुए कोमल पौधे सिर हिला-हिलाकर नाच रहे थे । पत्ते ताल दे रहे थे । काँटे पहरा दे रहे थे । कलियाँ चटक रही थीं । उन्हें उस मस्तीमें अपनी ओर तेजीसे सरकती हुई बर्फीली मौतका आभासतक न था और तब, जब कि सब कुछ, जीवनकी मदहोश रङ्गिनियोंमें विभोर था, दो-आत्माएँ, बर्फके नीचे दबी हुई एक गाड़ीकी सलवटोंसे निकलकर मुक्त-गगनकी ओर उड़ गयीं । दो तिलगोजेके पेड़ उसी जगह उभर आये थे । दो पशु अब स्वच्छन्दतापूर्वक चर रहे थे । पहाड़ और मैदानका क्रम भी पूर्वकी भाँति चल रहा था मानो कुछ हुआ ही न हो ।

ठीक इसी समय दो देवदूत, एक देवदारके वृक्षके नीचे खड़े हुए, उड़कर जाती हुई उन चिरपरिचिता आत्माओंकी ओर टकटकी लगाये थे । दो कबूतर उसी समय किसी दिशासे आकर इस देवदारके पेड़की उच्चस्थ फुनगियोंसे टकराते हुए सर्राटा भर गये ।

दोनों देवदूत, एक ही गुण, कर्म और स्वभावके प्रतीत हो रहे थे । इनमेंसे एकको उस युवकका अधिरक्षक बनाकर भेजा गया था और दूसरेको युवतीका । अब उनके प्राणान्त होनेके कारण ये भी स्वच्छन्द थे । फिर भी इन दोनोंको अभी उस अवधितक इसी भूखण्डमें ही निवास करना था जबतक कि हिमकी तहोंके नीचे दबे हुए वे दोनों शरीर पञ्चभूतोंमें विलय नहीं हो जाते ।

एक दिन सुनील आकाशसे एक तेजोमय पिण्ड उतरता दृष्टि पड़ा । वे दोनों शान्त हो सुनने लगे । एक ओजस्विनी वाणी मुखरित हो रही थी—

'उन्हें प्रेमकी महत्तम गरिमाके प्रभावसे मुक्ति प्राप्त हुई । अब तुम भी स्वतन्त्र हो ।' यह सुनकर विनम्रतासे वे बोल उठे । 'देवाधिदेव ! हम मुक्ति नहीं चाहते । हम उन पुनीत प्रेमियोंके देहोंकी पूजाका ही अधिकार आपसे चाहते हैं ।'

इसपर वायु-मण्डलमें कुछ लयबद्ध कम्पन-सा थिरक उठा । जिसके साथ मधुरिमा-स्नात-सी ध्वनि गूँज उठी—

'आसक्ति तो अपराध है, देवदूतो ! तुम्हें अब अवकाश ग्रहण करना ही होगा । हम तुम्हारे कार्यसे संतुष्ट हुए । आजसे तुम्हें मोघकर्मा देवदूतोंकी श्रेणियोंमें बैठनेका अधिकार रहेगा । तुमने मानवी-हृदयमें ईश्वरीय प्रेमके दिव्याङ्कुर प्रस्फुटित कर एक महान् कार्य किया है । तुमने देवलोकमें मृत्युलोकके लिये अलौकिक काव्यानन्दके एक दिव्य स्वरूपका प्रतिष्ठान किया है । तुम्हारे अधिरक्षणमें स्थित वे दोनों आत्माएँ बहुत सबल, पवित्र और धार्मिक प्रमाणित हुई हैं । तुम अब स्वतन्त्र हो ।'

एक अव्यक्त ध्वनि पुनः प्रादुर्भूत हुई ।

दोनों देवदूत हाथ जोड़कर मस्तक नवाते हुए बोले—'देवाधिदेव ! विश्वनियन्ताके हम सेवक हैं, जैसी आज्ञा ! किंतु अपराध क्षमा हो तो इतने बड़े कार्यके बदलेमें स्वामीसे कुछ पुरस्कार माँगें ?'

'पुरस्कार लेनेसे कर्मका दिव्यांश सुरक्षित रहते हुए भी पार्थिव अंश शिथिल पड़ जाता है, फिर भी हम तुमसे प्रसन्न हैं, माँग सकोगे ।' उत्तर मिला ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'हम दोनों युगयुगान्तरतक कभी पृथक् न हों। जब-जब वे आत्माएँ पुनः शरीर धारण करें, तब-तब पुनः हम दोनों जने भी प्रेमयुक्त हो एक दूसरेसे मिल सकें।'

'तुम मूर्ख हो। सो तो होगा ही। तुम अब सदाके लिये उस स्वर्गीय जोड़ेके समान ही एक हो चुके। तुम्हें अब कोई कर्म-फल पृथक् नहीं कर सकेगा। तुम्हें कुछ और पुरस्कार माँगना चाहिये था।' एक सुमधुर हास्य-ध्वनिसहित पुनः उत्तर प्राप्त हुआ।

दोनों देवदूतोंने हाथ मलते हुए एक-दूसरेकी ओर देखा। आँखों-ही-आँखोंमें कुछ मन्त्रणा की और पुनः ऊपरकी ओर देखते हुए बोले—

'महाप्रभो!' हम मुग्ध हो गये हैं। हमारी अज्ञता क्षमा हो। हम दूसरा वर माँगना चाहते हैं। हमें अनुमति मिलेगी?'

'क्यों नहीं!' पीताम्बरके फटकनेके हलकेसे शब्दके साथ-साथ एक व्यङ्गमिश्रित अधिहसित स्वर सुन पड़ा। प्रभु भी अपने सेवकोंसे परिहास करनेमें आनन्द अनुभव करते हैं। देखिये न! लीलामय स्वयं अपने सेवकोंकी मूर्खतासे प्रेम करने लगे हैं।

वे दोनों—सच्चिदानन्दघन! तो हम यह चाहते हैं कि हमारी उन आत्माओंको कोई कष्ट न हो। हमें वे बहुत प्रिय हैं। वे जन्म-मरण, हानि-लाभ, सुख-दुःख और ईर्ष्या-आसक्ति आदिके विचित्र जंजालसे मुक्ति पा जायँ।

'देरतक मृत्युलोकके प्राणियोंकी संगतिमें रहनेके कारण तुम्हारी बुद्धिपर जडताका चित्र उभर आया है, प्रतीत हुआ। अच्छा, तो जाओ, हमें विलम्ब हो रहा है।' सुदूर गगनमें लोक-लोकान्तरोंके जन्म-जन्मान्तरों तकको पवित्र कर देनेवाला एक मुक्त हास्य सुन पड़ा।

दोनों देवदूत, अपनी अज्ञतापर कुछ संकुचितसे होते हुए प्रसन्न मुद्रामें एक दूसरेकी ओर अर्ध-निमीलित नेत्रोंसे निहारने लगे।

कुछ क्षण बाद, उन्होंने कहा—'प्रभु मिले भी उन दोनों हुतात्माओंके प्रतापसे, किंतु कुछ माँग न सके। हमें माँगना भी न आया। और वे अपनी भूलपर कहकहा लगाकर एक दूसरेकी ओर देखते हुए अपने उपवस्त्र कंधोंपर उँचाकर चलनेको समुद्यत हुए।

दूसरे ही क्षण, वे स्वेच्छापूर्वक स्वर्गीय-गगनमें विहार कर रहे थे।

पहलेने दूसरेको पूछा—

'क्यों? पक्षाणु, भला तुम ही सोचो कि आज हमें किस बड़े कार्यके लिये इतना सम्मान प्राप्त हुआ है?'

दूसरेने कहा—'मुझे यह सब सोचनेका अवकाश कहाँ। मुझे तो बरसोंसे तुम्हारा अनुगमन करनेके कारण 'चिन्तन' करना ही भूल गया है। मैं तो बस, उसे सुननेका अभ्यस्त हो गया हूँ, जो तुम सुनाते चलो। मेरी अब कोई स्वतन्त्र भावसत्ता ही नहीं और न मैं चाहता ही हूँ। मुझे तो तुम्हारे निर्णय, तुम्हारे आदेश और तुम्हारी इच्छाएँ अपनी ही प्रतीत होने लगी हैं सो तुम स्वयं सोचो और मुझे बताओ कि हमने कौन-सा बड़ा कार्य कर डाला है।'

पहला देवदूत कुछ मुस्कराया और दूसरे देवदूतको आलिङ्गन करते हुए बोला—

'तुम नहीं जानते और शायद जानोगे भी नहीं कि हमारे दृष्टान्तसे पहले, मृत्यु-लोकमें मानव और मानवीका सम्बन्ध अमैत्री-पूर्ण था।'

'तुम्हारा मतलब?' दूसरेने कुछ चकित हो प्रश्न किया।

'मेरा मतलब यही कि पति और पत्नीका सम्बन्ध ही राष्ट्रके पवित्र एवं सुगठित उत्थानका मूल है।

'कुछ और स्पष्ट करो।' दूसरेने मुस्कराकर कहा।

'मतलब यह कि जिस राष्ट्रमें पति और पत्नीके सम्बन्धको भौतिक दृष्टिकोणपर कसा जाय, वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता और लगभग सभी राष्ट्रोंमें यही एक ढंग मानव और मानवीको बाँधनेका था और चूँकि पार्थिव सम्बन्ध सदैव नश्वर हैं, अतएव अबतक मनुष्यमें ईश्वरीय प्रेमका समावेश न हो पाया था। एक दूसरेके प्रति घृणा और अविश्वासका बाजार गर्म था। बड़े-बड़े गृहकलह और उनसे भी बड़े साम्प्रदायिक विद्वेष तथा उनसे भी अधिक भयावने राष्ट्र-संघर्ष इस मानव-जगत्को हिंसाकी लपलपाती हुई जिह्वाओंकी भेंट चढ़ा रहे थे।

'तो इस सबका कारण क्या पति-पत्नी सम्बन्धसे जुड़ा हुआ कोई अदृश्य दोष था?'

'क्यों नहीं; तुमने ठीक सोचा पक्षाणु, कभी-कभी तुम ठीक वही बात पहले ही कह डालते हो जो मैं कहना चाहता हूँ।' पहलेने मृदुतापूर्वक कहा।

'सो तो तुम्हें याद ही है न कि तुम युवकके अभिरक्षक थे और मैं युवतीका। पत्नीको पतिके प्रति पूर्ण जिज्ञासाका भाव रहना ही चाहिये। पत्नी तो पतिके हृदयमें इसी गुणके कारण समावेश कर जाती है। जिस पत्नीमें पतिके प्रति आत्मत्यागका प्रशस्त भाव न हो, वह भला पवित्र प्रेमसम्बन्धको कैसे शाश्वत बना सकेगी? पुरुष तो स्वभावसे ही कठोर है, यदि पत्नी सहनशीला न हुई तो प्रेम कैसे बना रह सकेगा?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'और फिर अनेकों गृह-कलह जन्म लेकर क्रमशः कुटुम्ब, जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्र और विश्व-कलहमें परिवर्तित न हो जायँगे क्या ?'

पहले देवदूतने पुष्टि की।

दूसरेने कहा—'सूर्यांशु, तुमने उचित कहा है। विश्व-अशान्तिका मूल, गृह-अशान्ति ही है और गृह-अशान्तिका मूल पति और पत्नीमें एक दूसरेके प्रति मैत्रीभावका न होना है। एकका दूसरेपर सर्वतोभावेन न्यौछावर न होना है, किंतु ऐसा न हो सकनेका कारण ?'

पहला बोला—'जहाँतक मैं समझ पाया हूँ; इसका मूल कारण अज्ञान ही है। जब लोग स्वार्थसे ऊपर परमार्थको, हिंसासे ऊपर अहिंसाको, भोगसे ऊपर त्यागको, बदलेकी भावनासे ऊपर आत्मोत्सर्गको और व्यभिचारसे ऊपर ब्रह्मचर्यको अनुभवद्वारा समझने लग जायँगे, उसी क्षणसे चिरन्तन-सत्यका प्रकाश जगमगा उठेगा। जिसकी सुनहरी रेखाओंपर 'विश्व-प्रेम' अग्रसर होगा और सम्पूर्ण विश्वमें सभी प्रकारके कष्ट शान्त होकर संतुलित सुख और कल्याणका समन्वयी साम्राज्य व्याप्त हो जायगा।'

इससे आगेकी वार्ता सुनी न जा सकी। एक प्राण-गोलक-द्वारा अधिरन्त्रित वे दोनों शरीर व्योम-विहारमें रत इन्द्रियोंके अनुभूति-क्षेत्रसे परे जा चुके थे !

तूँवर भगवान

(लेखक—पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न)

बसन बढ़े कुंती बधू त्यों 'तूँवर भगवान'के
(श्रीनाभादासजी)

भगवान्‌के भक्तोंका ढंग बड़ा निराला होता है। इस संसारमें रहकर भी वे यहाँसे अलग रहते हैं। उनकी क्रियाएँ भी हम सांसारिक व्यक्तियोंसे सर्वथा विपरीत होती हैं। हम माया-मोहमें लिपटकर अनेक प्रकारकी यातनाएँ सहकर रोते-कलपते हैं, पर उसमें लिपटते ही जाते हैं; किंतु भगवान्‌के भक्त माया-मोहसे मुक्ति पानेके लिये भगवान्‌की चरण-शरण ग्रहण कर लेते हैं और उससे दूर रहनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। विपत्तियोंका आक्रमण उनपर भी होता है, दुःख उनके पास भी आते हैं, यातनाएँ उन्हें भी सताती हैं; किंतु वे उन सबका भगवान्‌का—अपने स्वामीका प्रेमभरा आशीर्वाद और प्रसाद समझकर सादर अभिनन्दन करते हैं। घोर कष्टके आवर्तमें पड़कर भी वे हँसते रहते हैं, माया उन्हें छल नहीं पाती। हमारा हृदय जितना अधिक छल-कपटपूर्ण होता है, भगवद्‌भक्त उतने ही सरल होते हैं। भीतर-बाहर उनका एक-सा होता है। हम संसारमें रचे-पचे रहते हैं और इसीमें उन्नतिके लिये उद्योग करते हैं, परंतु वे संसारमें 'पद्म-पत्रमिवाम्भसा' की भाँति रहकर करुणा-वरुणालय प्रभुके चरणोंकी ओर बढ़ते जाते हैं। उन्हीं प्रभुके मङ्गलमय तारण-तरण चरणोंकी प्राप्तिके लिये उनकी सारी क्रियाएँ होती हैं। कौन क्या कहता है, इसकी वे चिन्ता नहीं करते।

तूँवर जातिमें श्रीभगवानदास नामके एक परम भगवद्भक्त हो गये हैं। धर्म-कर्ममें इनकी दृढ़ आस्था थी। धर्मपालन ही इनके जीवनका मुख्य उद्देश्य था। इस कारण ये साधु-ब्राह्मणोंकी बड़ी सेवा करते थे। वृन्दाविपिनविहारी श्रीकृष्णचन्द्रमें इनकी अद्वितीय भक्ति थी ही। इस कारण ये प्रत्येक वर्ष एक बार मथुरा जाते। वहाँ कालिन्दीमें स्नान करके बड़े प्रेमसे रासलीला कराते।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंको देखकर इनका हृदय आनन्दकी तरङ्गोंमें तरङ्गित होने लगता था। इनकी आँखोंसे प्रेमके आँसू बहने लगते। रोम-रोम पुलकित हो जाते। रासलीला समाप्त हो जानेपर ये स्वर्णादिका दान करते। इसके बाद संतोंके चरण प्रक्षालन करके बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे उन्हें भोजन कराते थे। फिर उन्हें पहननेके लिये नूतन वस्त्र देते थे, इसके बाद ब्राह्मणोंको भी भोजन तथा वस्त्रादि दिया करते।

श्रीभगवानदासजी नियमपूर्वक प्रतिवर्ष प्रेमोन्मत्त होकर अपने प्राण-वल्लभ श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ऐसा करते थे, किसीको असंतुष्ट करनेका उद्देश्य उनका कदापि नहीं था, किंतु इतनेपर भी मथुराके कुछ ब्राह्मण इनपर मन-ही-मन कुपित रहते थे। वे अपना भाव मिथ्या अहम्मन्यताके कारण भक्त भगवानदासजीपर प्रकट नहीं कर पाते थे।

एक बार अवर्षणके कारण घोर अकाल पड़ गया। मनुष्य और पशु अन्न-जलादिके बिना त्राहि-त्राहि करने लगे। ऐसे समयमें भगवानदास-जैसा भक्त अपने पास धन किस प्रकार संचित रख सकता था। उन्होंने अपनी सम्पत्ति जनता-जनार्दनकी सेवामें लगा दी और इसी कारण उस वर्ष मथुरामें बहुत कम धन लेकर गये।

उनका हृदय अत्यन्त पवित्र था। छल-छद्मसे वे सर्वथा अपरिचित थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको बुलाकर बड़े प्रेम और विनयसे निवेदन किया—'इस वर्ष मेरे पास धनका अभाव है। जो कुछ है वह आपलोगोंके सामने है। इतनेमें ही आपलोग रासलीला करायें या संतोंको भोजन-वस्त्र दें या ब्राह्मणोंमें वितरित कर दें। आपलोग जो उचित समझें वही करें।'

ब्राह्मण मन-ही-मन मुदित हुए। उन्हें भक्तकी कीर्ति नष्ट करनेका अच्छा अवसर मिला। प्रपञ्चहीन भक्त श्रीभगवानदासकी सम्पत्ति लेकर पहले उन लोगोंने आटा, घृत, शाक तथा चीनी आदि आवश्यक खाद्य सामग्रियाँ मँगवाकर रख लिया और सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको दान देना प्रारम्भ किया। ब्राह्मणोंके मनमें उनकी कलुषित भावना काम कर रही थी। आन्तरिक द्वेषके कारण वे भक्तके माथे अपयश-तिलक लगानेकी चेष्टा कर रहे थे, किंतु जिसने अपना तन-मन त्रैलोक्यनाथके चरणोंमें छोड़ दिया है, जिसे एकमात्र विश्व-नियन्त्रककी ही आशा है, जो दयानिधान भगवान्‌के अतिरिक्त और किसीको कुछ जानता ही नहीं, उसे यश-अपयशसे क्या लेना-देना है? राग-द्वेषका प्रभाव उसपर नहीं पड़ता। सुख-दुःखसे वह विचलित नहीं हो पाता 'जो होता है, वह भगवान् करते हैं।' अपने इस दृढ निश्चयके कारण वह सदा प्रेमानन्दमें छका रहता है। निर्भय और निश्चिन्त रहता है। मस्त रहता है और सचमुच उसका आनन्द और उसकी मस्ती मिट नहीं पाती। स्थायी बनी रहती है। समष्टिसंचालक स्वयं उसकी चिन्ता करते हैं। उसका योग-क्षेम वे स्वयं वहन करते हैं। अर्जुनसे अपने ही मुखारविन्दसे उन्होंने कहा था—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९। २२)

भगवान्‌का तो यह स्वभाव ही है। जो समस्त आशा छोड़कर केवल उन्हें ही भजते हैं, उनकी वे उसी प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार अबोध शिशुकी रक्षा जन्मदायिनी अत्यन्त प्रेमसे करती है। भगवान् श्रीरामने अपने इसी स्वभावको महामुनि श्रीनारदजीपर स्पष्ट प्रकट कर दिया था।

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥
(रामचरितमानस)

ब्राह्मणोंने चाहा सारा धन केवल ब्राह्मणोंमें ही व्यय कर दें, किंतु वे जिस वस्तुमेंसे जितना निकालते थे, उसमें शतगुणी वृद्धि हो जाती थी। इस प्रकार स्वर्ण-मोहरें भी जितनी निकाली जातीं, उनमें शतगुणी वृद्धि होती गयी।

ब्राह्मणोंने एक-एक ब्राह्मणोंको बीस गुना दान दिया और भिजवाया भी, किंतु कोई सामग्री कम नहीं हो सकी। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर ब्राह्मण मन-ही-मन सशङ्कित होकर भक्तराजके गुणोंकी प्रशंसा एवं भगवान्‌की महिमाका गान करने लगे।

उस बार भी बड़े समारोहपूर्वक रासलीला हुई। ब्राह्मण-साधुओंका अपूर्व सत्कार तो हो ही चुका था।

भगवान् और उनकी कृपा धन्य है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शीघ्रातिशीघ्र परमात्माकी प्राप्ति होनेके साधन

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुत-से भाई मुझसे पूछा करते हैं कि 'परमात्माकी प्राप्ति कितने समयमें हो सकती है ?' इसका उत्तर मैं यह दिया करता हूँ कि इसके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। इसमें तो साधकके भावकी ही प्रधानता है। (१) ईश्वर और महापुरुषोंमें परम श्रद्धा, (२) परमात्माके स्वरूपका तात्त्विक ज्ञान, (३) निष्काम कर्म और (४) अनन्य प्रेम (अनन्य भक्ति) पूर्वक भगवान्से मिलनेकी तीव्र इच्छा—ये सब भाव हैं। ये सभी भाव परमात्माकी प्राप्तिके उत्तम साधन हैं। इनमेंसे प्रत्येक भावमें परमात्माको प्राप्त करा देनेकी शक्ति है। साथमें ममता और अभिमानके अभावपूर्वक तीव्र अभ्यास और वैराग्य हो, तब तो बहुत शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। महर्षि श्रीपतञ्जलिने कहा है—

तीव्रसंवेगानामासन्नः। (योग० १। २१)

'जिनके अभ्यास-वैराग्यके साधनकी गति तीव्र है, उनका योग शीघ्र सिद्ध होता है।'

मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः।
(योग० १। २२)

'किंतु अभ्यास-वैराग्यके साधनकी मात्रा हल्की, मध्यम और उच्च होनेके कारण तीव्र संवेगवालोंमें भी कालका भेद हो जाता है।'

इसलिये जिनका साधन तीव्र होता है तथा भाव भी उच्च कोटिका होता है, उनको शीघ्रातिशीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

(१) जैसे बिजलीकी फिटिंग हो जाने और पावर-हाउससे कनेक्शन प्राप्त हो जानेपर स्विच दबानेके साथ ही रोशनी क्षणमात्रमें हो जाती है, इसी प्रकार मनुष्य जब पात्र बन जाता है अर्थात् जब वह परम श्रद्धालु बन जाता है, तब उसे परमात्माकी प्राप्ति तत्क्षण हो जाती है। भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(४। ३९)

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

जो ईश्वर और महापुरुषोंमें भक्ति एवं प्रत्यक्षकी भाँति विश्वास है, वह श्रद्धा है और उनमें जो भक्तिपूर्वक प्रत्यक्षसे भी बढ़कर विश्वास है, वह परम श्रद्धा है। प्रत्यक्षसे बढ़कर श्रद्धा कैसी होती है—इसको समझनेके लिये राजा द्रुपदके चरित्रपर ध्यान देना चाहिये। पहले जब राजा द्रुपदके कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने संतानके लिये भगवान् शङ्करकी उपासना की थी। भगवान् शङ्करके प्रसन्न होनेपर राजाने उनसे संतानकी याचना की। तब शिवजीने कहा—'तुम्हें एक कन्या प्राप्त होगी।' राजा द्रुपद बोले—'भगवन्! मैं कन्या नहीं चाहता; मुझे तो पुत्र चाहिये।' इसपर शिवजीने कहा—'वह कन्या ही आगे चलकर पुत्ररूपमें परिणत हो जायगी।' इस वरदानके फलस्वरूप राजा द्रुपदके घर कन्या उत्पन्न हुई। राजाको भगवान् शिवके वचनोंपर पूर्ण विश्वास था, इसलिये उन्होंने उसे पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध किया और उसका नाम भी पुरुष जैसा 'शिखण्डी' रक्खा। इतना ही नहीं, उन्होंने दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्माकी कन्यासे उसका विवाह भी कर दिया। यद्यपि प्रत्यक्षमें तो वह लड़की है, पर राजाको पूर्ण विश्वास है कि वह समयपर लड़का बन जायगा और हुआ भी वैसा ही। यह लौकिकविषयक प्रत्यक्षसे बढ़कर श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धा परमात्मामें हो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण अवताररूपमें पृथ्वीपर विद्यमान थे, उस समय जिन भीष्म, अर्जुन आदि पुरुषोंकी उनमें परम श्रद्धा थी, उनको तो वे प्राप्त ही थे; किंतु जिन दुर्योधनादिकी भगवान्में श्रद्धा नहीं थी, उनको भगवान् प्राप्त होकर भी अप्राप्त ही थे। जैसे किसीके पास पारस तो है परंतु उसे पारसका ज्ञान नहीं है तो उसे पारस प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त ही है, वैसे ही जिनको भगवान् श्रीकृष्णके परमात्मा होनेका विश्वास और अनुभव नहीं था, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त ही थे; क्योंकि अनुभव होनेसे ही श्रद्धा होती है और श्रद्धा होनेसे ही भगवान्में प्रेम होकर उनकी प्राप्ति होती है। जैसे भक्त सुतीक्ष्णका भगवान् श्रीरामके परमात्मा होनेमें विश्वास था, इसीसे वे भगवान्के प्रेममें मग्न हुए उनका दर्शन करनेके लिये आतुर हो चल पड़े तथा प्रेममें इतने विह्वल हो गये कि उन्हें अपना भान भी नहीं रहा और वे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मार्गमें ही बैठ गये । उनके प्रेमके कारण भगवान् तुरंत उनके निकट आ पहुँचे । उनकी इस प्रेमावस्थाका वर्णन श्रीतुलसीदासजीके शब्दोंमें ही पढ़िये—

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीछन रति भगवाना ॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥
प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
... ...
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥

इस प्रकार भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है, भगवत्प्राप्त महापुरुषमें श्रद्धा-प्रेम होनेसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है ।

जैसे पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञाके अनुसार चलती है, जैसे मातृ-पितृ-भक्त मनुष्य माता-पिताकी आज्ञाके अनुसार चलता है और जैसे ईश्वरका भक्त ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार चलता है, उसी प्रकार जो महापुरुषकी आज्ञाके अनुसार बड़ी प्रसन्नतापूर्वक आचरण करता है, उसको भी परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है । छान्दोग्य उपनिषद्‌में कथा आती है कि जबालाके पुत्र सत्यकामका श्रीहारिद्रुमत गौतमकी कृपासे—उनकी आज्ञाके पालनसे ही उद्धार हो गया और महात्मा सत्यकामकी सेवा करनेसे उपकोसलका उद्धार हो गया ।

सूत्रधार कठपुतलीको जैसे नचाता है, वैसे ही वह नाचती है, उसी प्रकार जो महापुरुषके प्रति अपने-आपको सौंपकर वे नचावें वैसे ही नाचता है, उसको बहुत ही शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है । फिर जो जैसे छाया पुरुषका अनुसरण करती है, उसी प्रकार महापुरुषके संकेतके अनुसार चलता है, उसका अतिशीघ्र उद्धार हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है ! एवं महापुरुषके सिद्धान्तोंको समझकर उनके अनुसार चलनेका जिसका स्वभाव बन गया है, वह तो परमात्माको प्राप्त ही है । जैसे दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब दीखनेकी भाँति एक ईश्वरभक्तको ईश्वरके मनकी बात मालूम हो जाती है, पतिव्रता स्त्रीको पतिके मनकी बात मालूम हो जाती है, इसी प्रकार महापुरुषमें परम श्रद्धा रखनेवाले पुरुषको महापुरुषके मनकी बात मालूम हो जाती है । तब उस परम श्रद्धालुकी सारी क्रियाएँ महापुरुषके मनके अनुकूल स्वाभाविक ही होने लगती हैं । यह है महापुरुषमें सबसे बढ़कर परम श्रद्धा । ऐसी परम श्रद्धा होनेपर महापुरुषकी कोई भी क्रिया अपने मनके विपरीत होनेपर भी विपरीत नहीं लगती । वास्तवमें महापुरुषोंकी कोई भी क्रिया शास्त्रविपरीत नहीं होती, बिना समझे हमें विपरीत दीख सकती है । यदि वास्तवमें शास्त्र विपरीत क्रिया होती है तब तो वह महापुरुष ही नहीं है । महापुरुषमें जिसकी परम श्रद्धा है, उसको तो उनकी सारी क्रियाएँ लीलाके रूपमें दीखने लगती हैं, चाहे वे उसके मनके कितनी भी विपरीत क्यों न हों । अपने मनके अनुकूल क्रिया तो सभीको आनन्द देनेवाली होती है; किंतु महापुरुषकी अपने मनके विपरीत क्रिया देखकर भी जिस परम श्रद्धालुको ऐसी अतिशय प्रसन्नता होती है और वह उसमें इतना मुग्ध हो जाता है कि उसमें यह प्रसन्नता समाती ही नहीं तथा उस प्रसन्नतामें वह अपने-आपको भी भूल जाता है, उस परम श्रद्धालु साधकको श्रद्धाके प्रभावसे भगवान्‌की प्राप्ति उसी क्षण हो सकती है । इसके लिये मैंने शास्त्रमें तो कोई उदाहरण नहीं देखा, किंतु यह मेरे हृदयका उद्गार है ।

(२) परमात्माके स्वरूपका तात्त्विक ज्ञान भी एक उच्चकोटिका भाव है । जैसे स्वप्नावस्थामें स्वप्नके संसारके सम्बन्धमें जब यह ज्ञान हो जाता है कि यह स्वप्नका संसार है, तब उसी क्षण उस मनुष्यकी जाग्रत् अवस्था हो जाती है, इसी प्रकार इस संसारको स्वप्नवत् समझ लेनेपर जब परमात्माका यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब क्षणभरमें परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है । उपनिषद्‌में बतलाया है—

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ।

(मुण्डक० ३ । २ । ९)

'निश्चय ही जो कोई भी उस ब्रह्मको जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है ।'

कभी मनुष्यको ऐसा दिग्भ्रम हो जाता है कि वह दिग्भ्रम वर्षोंतक दूर नहीं होता, किंतु अपने जन्मस्थानपर आनेसे उसी क्षण दूर हो जाता है । इसी प्रकार जब मनुष्य परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो जाता है, तब यह संसारका भ्रम क्षणभरमें दूर हो जाता है ।

यह जो कुछ दीखता है, जो कुछ समझमें आता है और जिनके द्वारा देखा और समझा जाता है, वे मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ—सभी मायाके कार्य हैं और जड हैं, किंतु आत्मा चेतन है । जब मनुष्यको इस प्रकारका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब वह उसी क्षण परमात्माको प्राप्त हो जाता है । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥
(१३ । ३४)

'इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जो पुरुष ज्ञाननेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं ।'

(३) निष्कामता भी एक उत्तम भाव है । इसकी प्रशंसा सभी शास्त्रोंमें की गयी है । कठोपनिषद्में निष्कामी नचिकेताकी बड़ी सुन्दर कथा है । जब नचिकेताने यमलोकमें जाकर यमराजसे आत्मतत्त्वके विषयमें प्रश्न किया तो उस समय यमराजने उसकी परीक्षा करनेके लिये बहुत-से प्रलोभन दिखलाते हुए कहा—'नचिकेता ! तुम हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डलके महान् साम्राज्यकी माँग लो और इन सबको भोगनेके लिये जितने वर्षोंतक जीनेकी इच्छा हो, उतने वर्ष जीते रहो तथा जो-जो भोग मृत्युलोकमें दुर्लभ हैं, उन सम्पूर्ण भोगोंको तुम इच्छानुसार माँग लो । रथ और नाना प्रकारके बाजोंके सहित इन स्वर्गकी अप्सराओंको अपने साथ ले जाओ । मनुष्योंको ऐसी स्त्रियाँ निस्संदेह अलभ्य हैं । मेरे द्वारा दी हुई इन स्त्रियोंसे तुम अपनी सेवा कराओ । नचिकेता ! मरनेके बाद आत्माका क्या होता है—इस बातको मत पूछो !'

इस प्रकारका प्रलोभन दिये जानेपर भी नचिकेताका चित्त उनमें नहीं लुभाया, बल्कि उसने यही कहा—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥
.... वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥
(कठ० १ । १ । २६-२७)

'यमराज ! जिनका आपने वर्णन किया, वे क्षणभङ्गुर भोग मनुष्यके अन्तःकरणसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजको क्षीण कर डालते हैं । इसके सिवा, समस्त आयु, चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो, अल्प ही है । इसलिये ये आपके रथ आदि वाहन और ये अप्सराओंके नाच-गान आपके ही पास रहें, मुझे ये नहीं चाहिये । मेरा प्रार्थनीय तो वह आत्मविषयक वर ही है ।'

यह सुनकर यमराज प्रसन्न हो गये और बोले—'नचिकेता ! तुम विद्याके सच्चे अभिलाषी हो; क्योंकि बहुत-से बड़े-बड़े भोग भी तुमको नहीं लुभा सके । हमें तुम-जैसे ही पूछनेवाले जिज्ञासु मिला करें ।' यह है निष्काम भाव ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित निष्कामभाव तो इससे भी बढ़कर है । गीतामें तो यहाँतक बतला दिया गया है कि निष्काम भाव अभ्यास, ज्ञान और परमात्माके ध्यानसे भी बढ़कर है (गीता ५ । २; ६ । १; १२ । १२) । इतना ही नहीं, यह साधन सुगम भी है (गीता ५ । ३) तथा यह स्वतन्त्र भी है (गीता ५ । ४-५; १३।२४) ।

यदि कहें कि शास्त्रमें यह कहा गया है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—बिना ज्ञानके कल्याण नहीं हो सकता; सो ठीक है । किंतु कर्मयोगके साधनके प्रभावसे अन्तःकरण शुद्ध होकर परमात्माका यथार्थ ज्ञान भी स्वतः ही प्राप्त हो जाता है (गीता ४ । ३८) ।

यदि कहें कि पापोंका नाश हुए बिना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती सो ठीक है । इस निष्काम कर्मसे पापोंका सर्वथा नाश भी हो जाता है (गीता ४ । २३; ५ । ११) ।

इतना ही नहीं, कर्मयोगके साधकको परम शान्तिकी प्राप्ति भी इसी साधनसे हो जाती है (गीता २ । ७१, ५ । १२) । एवं परम शान्तिकी प्राप्तिके साथ ही अनामयपदकी और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है (गीता २ । ५१; ३ । १९) ।

इसके सिवा इस निष्काम कर्मके साधनसे साधकको परमात्माकी प्राप्ति उसी क्षण हो जाती है । भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥
(५ । ६)

'अर्जुन ! कर्मयोगके बिना तो संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग प्राप्त होना ही कठिन है और भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ।'

साथमें भगवान्‌की भक्तिका समावेश हो, तब तो कहना ही क्या है ! उसके लिये तो भगवान् स्वयं कहते हैं कि 'वह निःसंदेह मुझे प्राप्त हो जाता है ।' गीताके १८ वें अध्यायके ४९वेंसे ५५ वें श्लोकतक वर्णित ज्ञाननिष्ठाके अनुसार जो परमात्माकी प्राप्ति संसारके विषय-भोगों और राग-द्वेषके त्यागसे, एकान्तवास, अतिशय वैराग्य और परमात्माके ध्यानसे मल, विक्षेप और आवरणका नाश होनेपर होता है, वह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भगवान्‌की शरणपूर्वक सदा-सर्वदा कार्य करते हुए भगवान्‌की कृपासे सहज ही हो जाती है (गीता १८ । ५६) । यह कर्मयोगके साथ भगवान्‌की भक्तिका समावेश कर देनेकी विशेष महिमा है । भगवान्‌ने अर्जुनसे गीतामें आठवें अध्यायके ७ वें श्लोकमें भी कहा है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर । इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

निष्काम भावसे कर्म करनेवाला पुरुष विषयोंमें और कर्मोंमें आसक्त नहीं होता, तब वह पुरुष कर्म करता और विषयोंको भोगता हुआ भी परमात्माको प्राप्त हो जाता है । निष्काम भावके प्रभावसे अन्तःकरणकी शुद्धि, सम्पूर्ण दुःखों, पापों और विकारोंका नाश, चित्तकी प्रसन्नता और परम शान्तिकी प्राप्ति—ये सभी बातें स्वतः ही आ जाती हैं तथा कार्य करते समय धैर्य, उत्साह और प्रसन्नता रहती है; किंतु लोग निष्काम कर्मके तत्त्वको नहीं समझते । इसमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, भावकी प्रधानता है । दूसरोंके हितके लिये मनुष्य धन, पदार्थ, शरीरका आराम और स्वार्थका त्याग करके भी तबतक निष्कामी नहीं समझा जाता, जबतक उसमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा और प्रीति रहती है; क्योंकि मनुष्य मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये उपर्युक्त सभी स्वार्थोंका त्याग कर सकता है । एवं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग होनेपर भी जबतक ममता, आसक्ति और अभिमानका त्याग नहीं होता, तबतक वह वास्तवमें निष्कामी नहीं समझा जाता । इन सबके त्याग होनेपर भी यदि वह अपनेको निष्कामी समझता है तो यह भी उसके लिये दोष है । लोग स्वार्थका त्याग करके कर्म करते हैं और अपनेको निष्कामी मान लेते हैं; किंतु उनकी यह मान्यता गलत है । निष्कामी पुरुषको लोग ही निष्कामी कहते हैं, वह अपनेको निष्कामी नहीं मानता ।

मनुष्य जब राग-द्वेषसे शून्य हो जाता है, उसके अन्तःकरणसे राग-द्वेषका अत्यन्त अभाव हो जाता है तब उसके प्रभावसे उसके मन-इन्द्रिय तो स्वाभाविक ही वशमें हो जाते हैं । वह विषयोंसे उपराम हुए बिना ही, विषयोंमें विचरण करता हुआ ही सहज ही परमात्माको प्राप्त कर लेता है । गीतामें भगवान् कहते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥
(२ । ६४-६५)

'अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक तो अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है । अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है ।'

इसलिये मनुष्यको सम्पूर्ण क्रियाओं और पदार्थोंमें भगवद्भक्तिका समावेश करके निष्काम-भावसे कर्म करना चाहिये । सम्पूर्ण पदार्थोंमें भगवान् व्यापक हैं, वे सब भगवान्‌के हैं और मैं भी भगवान्‌का हूँ एवं भगवान् मेरे हैं तथा मैं जो कुछ करता हूँ, भगवान्‌के आज्ञानुसार भगवत्प्रीत्यर्थ करता हूँ—इस भावसे भावित होकर कर्म करना भगवद्भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका साधन है । इस प्रकार कर्म करनेवाला पुरुष परमात्माकी प्राप्तिरूप परम सिद्धिको अनायास ही प्राप्त कर लेता है । भगवान् कहते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(गीता १८ । ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है ।'

यों भक्तिसंयुक्त निष्काम कर्म करनेवाला मनुष्य व्यवहार करते समय पशु, पक्षी, कीट, पतंग, देवता, पितर और मनुष्य आदि सभीमें भगवद्भाव रखता है और भगवद्भावसे भावित हुआ सबके हितमें रत रहता है । वह अतिथिकी सेवा करते समय अतिथिमें, भूतयज्ञ करते समय गौ, कुत्ते आदिमें, श्राद्ध-तर्पण करते समय पितरोंमें, श्रुति-स्मृतिका स्वाध्याय करते समय ऋषियोंमें और पूजा-होम आदि करते समय

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देवताओंमें भगवद्भाव रखता है। यह भक्तिसहित निष्काम कर्मयोग है। निष्कामभाव ज्यों-ज्यों उत्तरोत्तर परिपक्व होता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके चित्तमें प्रसन्नता, शान्ति, परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान, ईश्वरमें प्रेम और संसारसे वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। जो लोग निष्कामी होनेका दावा रखते हैं, वे निष्कामी नहीं हैं। जो निष्कामी होता है, वह निष्कामी होनेका दावा नहीं रखता। उसका जीवन ही निष्काम हो जाता है। निष्कामभाव बहुत ही ऊँची श्रेणीकी वस्तु है। यह अभ्यास, वैराग्य, ज्ञान और ध्यान आदिसे भी श्रेष्ठ है (गीता १२। १२)।

(४) अनन्य प्रेमपूर्वक भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छाका होना बहुत ही उत्तम है। जब मनुष्यकी संसारसागरसे उद्धार होनेकी तीव्र इच्छा हो जाती है, तब उसका शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। इसे नीचे लिखी कहानीसे समझना चाहिये।

एक जिज्ञासुने किसी समुद्रतटवर्ती महात्माके पास जाकर पूछा—'महाराजजी ! संसारसे उद्धार होनेमें कितना समय लगता है ?' महात्माने उत्तर दिया—'यदि उद्धार होनेकी तीव्र इच्छा हो तो एक मिनटमें संसारसे उद्धार हो सकता है।' जिज्ञासुने कहा—'ऐसा ही उपाय बताइये, जिससे एक मिनटमें कल्याण हो जाय।' महात्मा बोले—'स्नान करनेके बाद बतलाऊँगा। चलो अभी हम समुद्रमें स्नान कर आवें।' फिर दोनों स्नान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये और दोनोंने ही समुद्रमें प्रवेश किया। महात्माका शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। स्नान करते समय महात्माने जिज्ञासुके शरीरको जोरसे दबा दिया और उसे एक मिनटतक दबाये ही रहे। इससे वह बहुत छटपटाने लगा। तब महात्माने उसको बाहर निकाल दिया। उस समय जिज्ञासु कुछ उत्तेजित होकर बोला—'आप मुझे यहाँ किसलिये लाये थे ?' महात्माने उत्तर दिया—'एक मिनटमें कल्याण किस प्रकार होता है—यह बात बतलानेके लिये तुझे यहाँ लाया था।' जिज्ञासुने कहा—'क्या समुद्रमें डुबो देनेसे एक मिनटमें कल्याण होता है ?' महात्मा बोले—'नहीं।' जिज्ञासुने कहा—'तब फिर आपने समुद्रमें मुझको दबाकर क्यों रक्खा ?' महात्माने उत्तर दिया—'तुम्हें अनुभव करानेके लिये। बताओ जब तुमको मैंने दबा रखा था, तब तुम्हारे मनमें बारंबार क्या बात आती थी ?' जिज्ञासुने कहा—'उस समय बार-बार मेरे मनमें यही आता था कि किस प्रकार शीघ्र-से-शीघ्र समुद्रसे बाहर निकलूँ। मैं शक्तिभर प्रयत्न भी करता रहा पर मैं स्वयं निकल नहीं सका। आपने निकाला तभी निकला।' महात्मा बोले—'इसी प्रकार संसार-सागरसे बाहर निकलनेकी तीव्र इच्छासे जब मनुष्यका जी छटपटाने लगता है, तब भगवान् उसका शीघ्रातिशीघ्र संसारसागरसे उद्धार कर देते हैं। तुम्हारी जैसी तीव्र इच्छा इस खारे समुद्रसे बाहर निकलनेकी हुई, ऐसी ही इस दुःखके घर संसारसागरसे बाहर निकलनेकी तीव्र इच्छा होनी चाहिये। यही एक मिनटमें संसारसागरसे उद्धार होनेका उपाय है।

परमात्माकी प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय आदि अनेक उपाय हैं। उनमेंसे शीघ्रातिशीघ्र परमात्माकी प्राप्ति होनेका यह एक विशेष उपाय है—भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छाका होना। जब मनुष्य भगवान्‌के विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, भगवान्‌से मिले बिना रह ही नहीं सकता, तब भगवान् भी उससे मिले बिना नहीं रह सकते, भगवान उसको शीघ्र दर्शन दे देते हैं। श्रीरामके वियोगमें जब भरतजी विरहव्याकुलतामें मग्न हो गये, तब उसी समय भगवान्‌के पहुँचनेका संवाद सुनाने श्रीहनुमान्‌जी उनके पास आ पहुँचे। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥
जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

जब पाण्डव वनमें निवास कर रहे थे, उस समय एक दिनकी बात है कि द्रौपदीके भोजन कर चुकनेपर महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंके साथ उनके पास आकर उनके अतिथि हुए। तब द्रौपदीको अन्नके लिये बड़ी चिन्ता हुई। उस समय उसने व्याकुल होकर मन-ही-मन करुणाभावसे भगवान्‌को इस प्रकार पुकारा—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय।
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन॥
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय।
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥
(महा० वन० २६३ । ८–१०,१६)

'हे कृष्ण ! हे महाबाहु श्रीकृष्ण ! हे देवकीनन्दन ! हे अविनाशी वासुदेव ! चरणोंमें पड़े हुए दुखियोंका दुःख दूर करनेवाले हे जगदीश्वर ! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हो। अविनाशी प्रभो ! तुम्हीं इस विश्वकी उत्पत्ति और संहार करनेवाले हो। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोपाल ! तुम्हीं समस्त प्रजाका पालन करनेवाले परात्पर परमेश्वर हो। भगवान् ! पहले कौरवसभामें दुःशासनके हाथसे जैसे तुमने मुझे बचाया था, उसी प्रकार इस वर्तमान संकटसे भी मेरा उद्धार करो।'

एवं स्तुतस्तदा देवः कृष्णया भक्तवत्सलः।
द्रौपद्याः संकटं ज्ञात्वा देवदेवो जगत्पतिः॥
पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः।
तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः॥
(महा० वन० २६३ । १७–१८)

'द्रौपदीके इस प्रकार स्तुति करनेपर अचिन्त्यगति परमेश्वर देवाधिदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल भगवान् केशवको यह मालूम हो गया कि द्रौपदीपर कोई संकट आ गया है। फिर तो वे शय्यापर अपने पास ही सोयी हुई रुक्मिणीको छोड़कर तुरंत वहाँ आ पहुँचे।'

श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण शारदीय पूर्णिमाको गोपियोंके मध्यमें रास करते-करते अदृश्य हो गये तब सभी गोपियाँ उनके विरहमें व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करने लगीं; तब भगवान् गोपियोंको अतिशय व्याकुल देखकर उनके सम्मुख तुरंत प्रकट हो गये।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः॥
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥
(श्रीमद्भा० १० । ३२ । १–२)

'परीक्षित् ! गोपियाँ भगवान्के विरहके आवेशमें इस प्रकार भाँति-भाँतिसे गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने प्रियतम श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे वे अपनेको रोक न सकीं, करुणाजनक सुमधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं। ठीक उस समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुख-कमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था।'

इन सब उदाहरणोंसे यही बात सिद्ध होती है कि प्रेमपूर्वक विरहकी व्याकुलतामें भगवान्के मिलनेकी अतिशय तीव्र इच्छा होनी चाहिये। यह तीव्र इच्छा ही सबसे बढ़कर और क्षणभरमें भगवान्की प्राप्तिका उपाय है। जैसे जलके वियोगमें मछली जलके बिना तड़प-तड़पकर मर जाती है, वैसी ही तड़पन भगवान्के विरहमें होनी चाहिये। यदि कहें कि मछली तो तड़पकर मर ही जाती है, उसे जल तो नहीं मिलता सो ठीक है, किंतु जल तो जड है, अतः उसमें मिलनेकी इच्छा नहीं होती। परंतु भगवान् तो चेतन और सुहृद् हैं अर्थात् बिना ही कारण दया और प्रेम करनेवाले हैं। वे एक क्षणका भी विलम्ब कैसे कर सकते हैं।

अतएव हमलोगोंको भगवान्के शरण होकर और उनके विरहमें व्याकुल होकर उनके मिलनेकी तीव्र इच्छापूर्वक करुणाभावसे पुकार करनी चाहिये। फिर भगवान्के आनेमें कोई विलम्ब नहीं है। भगवान्में अनन्य प्रेम (अनन्य भक्ति) होनेसे ही साधककी ऐसी स्थिति हुआ करती है।

अखण्ड नाम-स्मरणसे साक्षात् दर्शन

दिवा निशि च संध्यायां सर्वकालेषु संस्मरेत्।
अहर्निशं स्मरन्नाम कृष्णं पश्यति चक्षुषा॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

दिन, रात्रि और संध्या—सभी समय भगवान्के नामोंका स्मरण करना चाहिये। रात-दिन अखण्ड नाम-स्मरणसे भगवान् श्रीकृष्णके इन आँखोंसे—साक्षात् दर्शन हो सकते हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पढ़ो, समझो और करो*

(१)

ईमानदारीका उत्तराधिकार

मोहनलाल और भानीराम दोनों हिस्सेदार थे। व्यापार करते थे। मोहनलालकी रकम लगती थी, भानीराम काम करता था। परस्पर बड़ा विश्वास था। खूब प्रेम था। व्यापारमें इतनी कमाई होती थी कि मोहनलालको अपनी रकमका पर्याप्त व्याज मिलकर भी कुछ बच जाता था। भानीरामके चार-पाँच बच्चे थे। बड़ा परिवार था, इससे कुछ बचता तो नहीं था, पर खर्चका निर्वाह अच्छी तरह होता था। कुछ वर्षों बाद मोहनलालकी इच्छा कारबार न करके अलग रहनेकी हुई। स्त्री-पुरुष दो ही थे। अवस्था बड़ी हो गयी थी। 'व्यापारमें कहीं घाटा लग जाय तो फिर कठिनाई होगी।' इस विचारसे मोहनलालने भानीरामसे कह दिया कि 'मेरी रकम मुझे दे दो, तुम अपना व्यापार अकेले करो।' व्यापार चल निकला था। अच्छी साख हो गयी थी, इससे कोई खास अड़चन नहीं थी। रकम दूसरे लोगोंसे उधार मिल सकती थी। भानीरामकी इच्छा नहीं थी। वह इस समय अलग होना नहीं चाहता था। उसमें एक कारण था, जिसे वह बताना भी नहीं चाहता था। परंतु मोहनलालके विशेष जोर देनेपर भानीरामने बात मान ली। मोहनलालका हिस्सा निकाल दिया गया। उनकी असली रकम व्याज तथा नफे समेत कुछ दिनोंमें दे दी गयी, फाड़खती लिख दी गयी। मोहनलाल पत्नी सहित अलग रहने लगे।

भानीरामका व्यापार चलने लगा। पर भानीराम उदास रहता। पाँच-छः वर्षों बाद भानीरामको संग्रहणीकी बीमारी हो गयी। दवा की गयी, पर रोग बढ़ता ही गया। स्थिति बिगड़ गयी। तब एक दिन उसने अपने बड़े पुत्र भगवानदासको एकान्तमें बुलाकर कहा—'बेटा! मेरा शरीर अब नहीं रहेगा। पर मेरे मनमें एक चीजका बड़ा दुःख है। भाई मोहनलालकी हिस्सेदारीमें मैं काम करता था, उन्हींकी रकम लगती थी, इसे तुम जानते ही हो। उनका मुझपर बड़ा विश्वास था। उन्होंने कभी भी लेखा-जोखा नहीं देखा। मैंने जो कुछ बताया सो मान लिया। मैंने भी कभी विश्वासघात नहीं किया, न करना ही चाहता था। एक दिन तुम्हारे फूफा रामकुमारजी आये। उनके व्यापारमें घाटा लगा था और उनका फर्म फेल होने जा रहा था। उन्होंने दस हजार रुपये माँगे। मैंने सब स्थिति समझ ली। न देनेपर उनका फर्म अवश्य ही फेल हो जाता और वे सदाके लिये बर्बाद हो जाते। उन्होंने पहले कभी मोहनलालजीसे अनुचित व्यवहार किया था तथा उनसे लड़ लिये थे। अतएव उनसे छिपाकर रुपये लेना चाहते थे। उन्हें मालूम होनेपर वे देते भी नहीं। मेरे पास अलग रुपये थे नहीं। मैंने रामकुमारजीकी बड़ी दयनीय दशा देखकर और शीघ्र ही वापस

---

* 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंके द्वारा भेजी हुई बहुत-सी घटनाएँ मिली हैं, परंतु वे प्रायः सभी चमत्कारकी हैं। उन्हें प्रकाशित करनेमें बहुत समय लग सकता है, अतः अब चमत्कारकी घटनाएँ न भेजकर सत्य, ईमानदारी, अहिंसा, प्रेम, दया, सहिष्णुता, त्याग, इन्द्रियदमन, सेवा आदि सम्बन्धी छोटी-छोटी सच्ची घटनाएँ भेजनेकी कृपा करें। इस बार भी घटना ६। ७। ८ साभार 'अखण्ड आनन्द'से ली गयी हैं।

अप्रैलके अङ्कमें प्रकाशित 'राखे राम तो मारे कौन?' शीर्षक घटना श्रीटोरमलजी चौधरीके 'भोला' अवस्थानकालमें घटित हुई थी। श्रीरामजीवनजी चौधरी (श्रीटोरमलजीके सुपुत्र) तो घटनाके प्रेषकमात्र हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लौटा देनेका वचन देनेपर उन्हें रुपये दे दिये। मैंने सोचा था, रामकुमारजी लौटा देंगे। पर वे लौटा नहीं सके। मैंने संकोचवश मोहनलालजीसे कभी कुछ कहा नहीं। मेरे पास इतने रुपये अबतक हुए नहीं, नहीं तो, मैं जमा करवा देता। मोहनलालजीके अलग होनेके समय भी मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। पर रुपये तो उनके मुझको देने ही हैं। अपना कारबार अब ठीक चल रहा है। मेरा अनुमान है अगले छः महीनेतक तुम्हारे पास उन्हें लौटानेके लिये इतने रुपये नफेके हो जायँगे। अतएव मेरा अनुरोध है कि ज्यों ही तुम्हारे पास रुपये हों, व्याजसमेत तुरंत जाकर लौटा देना। इससे मेरी आत्माको बड़ी शान्ति मिलेगी। मैं तुम्हें उत्तराधिकारमें यह कर्तव्य भी दे जाता हूँ। भाग्यकी बात है, अभी उस दिन मोहनलालजीके घर चोरी हो गयी तथा जिनको उन्होंने कुछ रुपये दे रक्खे थे उनका भी काम बिगड़ गया। अतएव उनका हाथ बहुत तंग हो गया है। वे बड़े अभावमें हैं। तुम उन्हें रुपये दोगे तो उनको बड़ी प्रसन्नता होगी और मेरी आत्माको बहुत सुख पहुँचेगा।' सुपुत्र भगवानदासने पिताकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार किया। भानीरामजीका देहान्त हो गया!

× × ×

एक दिन मोहनलालजी अपनी पत्नीके पास बैठे थे कि भानीरामके लड़के भगवानदासने उनके पास पहुँचकर दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनोंने शुभाशीर्वाद देकर कहा—'बेटा! तुमलोग प्रसन्न रहो। मेरे तो दिन ही बदल गये हैं। आजकल खर्च चलना मुश्किल हो रहा है। भाई भानीरामसे अलग न होता तो यह दशा क्यों होती। खैर!' भगवानदासने तेरह हजार चार सौ रुपयेके नोटोंकी गड्डी उनके चरणोंमें रखकर मरते समय पिताकी कही हुई सारी बातें एक-एक अक्षर उनसे कह दीं। मोहनलाल सब सुनकर चकित हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसू बह चले। उन्होंने बड़ी मुश्किलसे रुपये लेने स्वीकार किये। दोनों (पति-पत्नी) ने भगवानदास तथा भानीरामके सारे परिवारको सैकड़ों आशीर्वाद गद्गदवाणीसे दिये। कहा—'बेटा! इस समय हमारी इस दुखी हालतमें तुमने ये रुपये देकर बड़ा ही उपकार किया है। तुम्हारे स्वर्गीय पिता धन्य हैं। मुझे तो इन रुपयोंकी कोई कल्पना ही नहीं थी। उन्होंने घरमें रुपये बरते भी नहीं थे। फिर भी मृत्युके समय उनको इतना ख्याल रहा। वे तुमसे कह गये और तुम धन्य हो, सच्चे उत्तराधिकारी सपूत हो, जो रुपयोंका जरा भी लोभ न करके व्याजसमेत मुझे रुपये देने आये हो। भगवान् तुम्हारा भला करें। हमारा रोम-रोम तुम्हें आशीर्वाद देता है। पर बेटा! मैं व्याजके रुपये नहीं लूँगा, इन्हें तुम वापस ले जाओ।'

भगवानदासने कहा—"चाचाजी! मैं तो पिताजीके आज्ञानुसार ही कर रहा हूँ। आपके आशीर्वादसे मैं बहुत कमा लूँगा। ये रुपये तो आपको रखने ही पड़ेंगे। पिताजीने आपके प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हुए मुझसे कहा था कि 'भाई मोहनलालजीके मुझपर बड़े उपकार हैं।' सो चाचाजी! हम उनके लड़के हैं। अतः उनकी जगह अब आप ही हमारे माता-पिता हैं। जबतक आपलोग जीयें, हमारी सेवा स्वीकार करते रहें। आपके भोजनादिकी सारी व्यवस्था हम आपके पुत्र करेंगे और आपको कृपा करके हमारी प्रार्थना माननी पड़ेगी।"

जैसे पिता, वैसा ही पुत्र! मोहनलाल और उनकी पत्नी दोनोंने आँसुओंकी धारा बहाते हुए सब स्वीकार कर लिया!

—तोलाराम गुप्त

(२)

सच्ची मानवता और पड़ोसीधर्म

देशमें दुर्दिन थे। हिंदू-मुसलमानोंमें जहाँ-तहाँ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मार-काट मची थी । पड़ोसके एक गाँवमें, जहाँ हिंदुओंकी संख्या कम थी, मुसल्मानोंने बड़े अत्याचार किये । घरोंमें आग लगा दी, सम्पत्ति लूट ली, बच्चों तथा बूढ़ोंतकको बेरहमीसे कत्ल कर दिया । बहिन-बेटियोंका धर्म भ्रष्ट करके उन्हें उड़ा ले गये । कोई भी जुल्म बचा नहीं । आस-पासके गाँवोंमें हिंदुओंमें बदलेकी दुर्भावना जागी । एक गाँवमें, जहाँ मुसल्मानोंकी संख्या कम थी, हिंदू युवकोंने बदला लेना चाहा । उनका खून खौल रहा था । उन्होंने वैसे अत्याचार तो नहीं किये । स्वभाव न होनेसे कर ही नहीं पाये । पर मुसल्मानोंको, उनका सब कुछ छीन-छानकर भगा दिया । दो-तीन गुंडोंको मार भी दिया । आतंक छा गया । लाला लखपतरायके बगलमें ही एक मुसल्मान बोहरेका घर था । घरके सब लोग भाग गये । घर लूट लिया गया । एक तरुणी लड़की बुखारके कारण न भाग सकी, उसको उसकी तक़दीरपर घरवाले छोड़ गये । वह घरके पीछे खड़ी काँप रही थी । कुछ हिंदू गुंडे उसे पकड़ना चाहते थे । उसने पीछेसे लाला लखपतरायकी पत्नीको पुकारकर कहा—'चाची ! मुझे बचाओ !' लाला लखपतरायजीकी पत्नीने करुण आवाज सुनी । उसने दौड़कर लखपतरायजीसे कहा, जो बाहर उपद्रव शान्त करनेमें लगे थे । वे दौड़े आये और लड़कीसे बोले—'बेटी, डर मत, तेरी चाचीके पास चली आ ।' तेज मिजाजके जोशभरे कुछ हिंदू युवक यह नहीं चाहते थे, उन्होंने रोकना चाहा; पर लाला लखपतरायजीने उनसे कहा—'देखो भैया ! यह मेरी धरमकी बेटी है, अतः तुमलोगोंकी बहिन है, अब इसकी ओर बुरी नजरसे ताकना बहिनकी ओर ताकना है । तुम मेरी बात मानकर चले जाओ ।' यद्यपि वे तरुण यह चाहते नहीं थे, पर लाला लखपतरायजीको सब मानते थे । गाँवमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो लालाजीके सद्व्यवहारोंके सामने सिर न झुकाता हो और उनके उपकारोंका ऋणी न हो । वे सब चले गये । लड़की तो पहले ही चाचीके साथ घरमें आ गयी थी । कहना नहीं होगा कि उन्होंने बेटीके समान ही सहज-सनेहसे उसे घरमें रक्खा और उपद्रव शान्त होनेपर पता लगाकर उसके रिश्तेदारोंके पास सुरक्षित पहुँचाकर सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्मका आदर्श परिचय दिया । —लेखराज मेहरा

(३)

दिल्लीका ईमानदार मजदूर

उस दिन दिल्ली स्टेशनपर हमलोग उतरे । सामान बहुत था, इसलिये एक रिटायरिंग रूम किरायेपर लेकर उसमें रखवा दिया गया । हमलोग सब आवश्यक सामान साथ लेकर मोटरोंपर सवार हो गये । पण्डित श्रीगोवर्धनजी भी सपरिवार उसी ट्रेनसे साथ आये थे । उन्होंने भी कुछ सामान रिटायरिंग रूममें रखवा दिया । एक पेटी—जिसमें उनके ठाकुरजी तथा कुछ जोखिमकी चीजें भी थीं और बिस्तर, कुलीके सिरपर रखकर वे बाहर आ गये । मोटरें जानेवाली थीं । वे सामानकी बात भूल गये, कुली शायद आगे-पीछे रह गया था, और पत्नीसहित मोटरपर सवार हो गये । नयी दिल्लीमें पहुँचकर जब सामान देखा तो नहीं मिला । मिलता कैसे, वह तो रखवाया ही नहीं था । बड़ी निराशा तथा चिन्ता हुई । सामान मिलनेकी आशा बहुत ही कम थी । वे वापस स्टेशन जाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगे । इतनेमें किसीने पुकारा—'बाबूजी ! इधर आइये, यह अपना सामान सम्हालिये ।' इन्होंने जाकर देखा, कुली बेचारा सामान रक्खे खड़ा है । उसने कहा, 'मैंने आपको ढूँढ़ा, आप मिले नहीं, तबसे मैं बाट देख रहा हूँ ।' सारी चीजें पण्डितजीको सुरक्षित मिल गयीं । बड़ी प्रसन्नता हुई । कुलीको एक रुपया उन्होंने इनाम दिया । दिल्लीके कुली—जहाँ बहुत बदनाम हैं, वहाँ इस गरीब कुलीकी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

यह अद्भुत ईमानदारी वहाँके कुलियोंके प्रति सद्भाव तथा श्रद्धा पैदा करती है।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

(४)

सद्गुरुकी महिमा

छः साल पहलेकी बात है। जिस समय हम कलकत्तेके 'तिलजाला' विभागमें रहते थे। जिस मकानमें हम रहते थे, वहाँ बिजली नहीं थी और आसपासका प्रदेश बिलकुल देहाती मालूम पड़ता था। इसलिये कोई अच्छा-सा मकान ढूँढ़नेका विचार चल रहा था।

हर शनिवारके दिन मेरे पति आफिससे दो बजेतक घर लौट आया करते थे। परंतु उस शनिवारको आफिस जाते समय बोले—'मैं आज आफिससे सीधा एक मकान देखने जाऊँगा। आनेमें पाँच बज जायँगे।'

ये आफिस चले गये। दुपहरमें दोसे पाँच बजेतकका समय मैंने सिलाई, पढ़ाई वगैरहमें बिताया। पाँच बजनेके बाद मैंने इनकी राह देखना शुरू किया। छः साढ़े छः हो गये, तब मैं चिन्ता करने लगी। फिर भी मनमें सोचती रही कि थोड़ी देरमें तो आ ही जायँगे। पर सात बजनेके बाद मुझसे नहीं रहा गया। मनमें तरह-तरहके कुविचार आने लगे और आँखोंसे आँसू गिरने लगे। आध घंटा मैं खूब रोयी। रोते-रोते सोचने लगी—'यदि रातभर ये घरमें नहीं लौट सके तो मेरा क्या होगा? कलकत्तेमें मैं तो बिलकुल नयी हूँ। इनको ढूँढ़ने कहाँ जाऊँ? सुना है इस शहरमें एक्सीडैन्ट (दुर्घटना) भी बहुत होते हैं। पिताजीको तार देने जाऊँ तो मुझे पोस्ट-आफिसका रास्ता भी ठीक मालूम नहीं था।' और इधर रात होती जा रही थी।

साढ़े सात बजे मेरा रोना कुछ कम हुआ। मुझे कुछ ख्याल आया। घरमें गुरु महाराजका एक छायाचित्र (फोटो) था, जिसकी ये मनोभावसे पूजा करते थे। मैंने गुरु महाराजको कभी देखा नहीं था, इसलिये मेरे मनमें उनके प्रति कोई भक्ति नहीं थी। परंतु इनके साथ मैं भी प्रतिदिन फोटोको प्रणाम अवश्य करती थी। उसी फोटोकी मुझे रोते-रोते याद आ गयी। मैं फोटोके पास जाकर प्रणाम करके बोली—'यदि गुरु महाराज सच्चे होंगे तो ठीक आठ बजे अपने भक्तको यानी मेरे पतिको घरमें पहुँचा देंगे। आठ बजेतक यदि इनका आना न होगा, तब तो मैं इन गुरु महाराजपर कभी विश्वास नहीं करूँगी।'

बस, इतना कहकर मैंने घड़ी गुरु महाराजके फोटोके सामने रख दी और मैं दीवालके पास जाकर बैठ गयी। घड़ीकी सूई अपनी गतिसे चल रही थी। इधर मेरे मनकी अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। इतनेमें पौने आठ हो गये। अब पंद्रह मिनटमें 'गुरुपर विश्वास करना या न करना'—इसका फैसला मैं करनेवाली थी।

आठ बजनेमें पाँच मिनट रहे, तब मेरे मनमें विचार आया कि अब ये नहीं आ सकते। और इतना सोचते ही मैंने आँखें बंद कर लीं। एक ही मिनट बाद मेरे कानोंमें इनके पैरके जूतोंकी आवाज आयी। मैंने आँखें खोलीं। मैं विश्वास न कर सकी अपनी आँखोंपर। इन्होंने मेरी रोयी-सी सूरत देखी और कहा—'तुम रो रही थी क्यों? क्या करूँ, मुझे बहुत देर हो गयी। मैं ठीक समयपर घर नहीं लौट सका।'

मैंने इनकी बातोंपर ख्याल नहीं किया। इनको देखते ही मेरी नजर घड़ीकी ओर गयी। आठ बजनेमें सिर्फ तीन मिनट बाकी थे। एकाएक मेरी नजर गुरु महाराजके फोटोपर गयी और मैंने जमीनपर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुचरणोंमें मेरा यही सर्वप्रथम भक्तिपूर्ण प्रणाम था। तबसे गुरुचरणोंमें मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गयी। फिर मैंने इनको सारी कहानी सुनायी। ये बोले—'अरे रे! मेरे गुरु महाराजको तुमने कितना कष्ट दिया। अरे,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इस तरह गुरुकी परीक्षा नहीं ली जाती । गुरुचरणोंमें मन-ही-मन विश्वास करना चाहिये ।' फिर प्रणाम करके बोले—'सद्गुरुनाथ ! मेरी पत्नीका अपराध क्षमा कीजिये ।'

—श्रीमती तारा पण्डित एम्० ए०

(५)

गङ्गाजलका प्रभाव

यों तो आयुर्वेदमें गङ्गा-स्नान एवं उसके जलपानका विशेष महत्त्व बताया गया है; किंतु जिसकी चर्चा नहीं की गयी है, वह भी मेरे अपने व्यवहारमें प्रत्यक्ष हो गया है । बात यह है कि मेरे पेटमें अक्सर दर्द हो जाया करता था । उस समय 'सल्फा दवाइयों' का प्रचलन न हो सका था, जिसके कारण डाक्टरोंकी शरणमें जाना आवश्यक हो जाता था और उसके लिये अनावश्यक व्यय करते-करते मैं तंग आ गया था । एक बार गाँवमें हैजेका प्रकोप हो उठा, इसलिये सभी कुओंमें 'ब्लीचिंग पाउडर' डाल दिया गया । फलस्वरूप कुएँका पानी पीना कठिन हो गया । बरसातका समय था, फिर भी मैंने गङ्गाजल (जो कि लाल रंग हो जाता है) पीना शुरू कर दिया । स्वाद अच्छा लगनेके कारण मैं सालों वही पीता रहा और यह क्रम तबतक जारी रहा, जबतक मैं यहाँसे पटना न चला गया । वहाँ होस्टलमें रहकर पढ़ रहा था, अतः गङ्गाजल पीना कठिन था । बी० ए० (ऑनर्स) करनेके बाद एम्० ए० की पढ़ाई समाप्त होनेपर आयी तो पेटमें पुनः दर्द आरम्भ हो गया । अब मैं समझ गया कि इस छः सालमें दर्द न होनेका मुख्य कारण गङ्गाका पहलेका पीया हुआ पावन जल ही था, जिसका असर आजतक था । अतः मैंने फिर गङ्गाजल पीना शुरू कर दिया (१९५२) और आज छः सालसे ऊपर हो रहा है—ईश्वरकी कृपासे आजतक मेरे पेटमें दर्द न हो सका है ।

अबतक यह मेरा वैयक्तिक प्रयोग था; किंतु मैंने इसे अपने गाँवके अन्य लोगोंको भी बताया और ईश्वरकी कृपासे उन्हें भी लाभ हुआ है ।

अतः आज मानव-समाजकी भलाईकी दृष्टिसे इसे आपके पास भेज रहा हूँ कि धर्मकी दृष्टिसे न भी हो तो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे गङ्गाजलका सेवन बड़ा लाभप्रद है । इसे सभी जाति एवं सम्प्रदायके लोगोंको व्यवहार करके अवश्य देख लेना चाहिये ।

—रमेन्द्रप्रसादसिंह 'विद्यार्थी'

(६)

लन्दनके टैक्सीवालेकी सहृदयता

रूस और इंग्लैंडकी यात्रासे लौटी हुई एक विदुषी महिलाने अपना लन्दनका एक अनुभव सुनाया था । उसमें वहाँके टैक्सीवालेकी सहृदयताका एक बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया था । उन्होंने कहा—

मैं लन्दनके एक बगीचेमें बैठकर पुस्तक पढ़ने लगी । पुस्तकमें इतना रस आया कि उसको पूरा करनेके बाद मैंने देखा तो रात्रिके ग्यारह बजे थे । सारा लन्दन शहर आरामसे सो रहा था । शहरकी ट्रामें तथा बसें बंद हो चुकी थीं । दूर राहपर नजर डालनेपर टैक्सीका भी मिलना मुश्किल था ।

मेरा निवासस्थान बगीचेसे कई मील दूर था । अतः बिना सवारीके वहाँ जाना मेरे लिये अशक्य था । मैं खड़ी सोच रही थी कि क्या किया जाय । इसी बीचमें मुझे वहाँ खड़ी देखकर दूरसे एक टैक्सीवाला मोटर लेकर वहाँ पहुँचा और अत्यन्त विनयपूर्वक उसने मुझसे मोटरमें बैठनेके लिये अनुरोध किया तथा मुझे कहाँ जाना है, पूछकर नाम-पता नोट कर लिया । मोटर चली । रास्तेमें हमलोगोंने कोई बात नहीं की । ठिकानेपर पहुँचकर मोटर रुकी । दरवाजा खोलकर मोटरवालेने मुझे विनयपूर्वक उतारा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

और सलाम करके कहा—'मैडम ! गुड नाइट !'

मैंने पूछा—'कितने पैसे दूँ ?'

उसने कहा—बहिन ! कुछ भी नहीं देना है । आज रात्रिको मैं आपको हमारे देशकी अतिथिके रूपमें यहाँ लाया हूँ । मैंने देखा—आप अकेली हैं, रातका समय है और घर जानेके लिये सवारीकी बाट देख रही हैं । मुझे कमाईकी आवश्यकता नहीं थी, परंतु लन्दनके टैक्सीवाले परदेशियोंके प्रति अपने कर्तव्य-पालनमें सदा तत्पर हैं, इसका विश्वास दिलानेके लिये ही मैं आपको यहाँ छोड़ने आया हूँ । सलाम !'

इतना कहकर उसने शिष्टतापूर्वक अभिवादन किया और टैक्सी चला दी । उस दिन मैंने देखा कि पाश्चात्त्य संस्कृतिके लिये हम चाहे सो कहें, परंतु सभ्यता, ईमानदारी और नारी-सम्मानके लिये मैं सदा उनकी प्रशंसा करूँगी । भारतको पाश्चात्त्य प्रजासे ये गुण सीखने चाहिये ।

—शान्तिलाल दीनानाथ मेहता

(७)

सच्ची सराफी

एक साधारण व्यापारी था । उसका नाम था—सत्यदेव । इस छोटे-से व्यापारीने सच्ची तंगीके समय काम आवे, इसके लिये बचा-बचाकर दो सौ रुपये इकट्ठे किये और उन्हें धर्मचन्द नामक एक व्यापारीके यहाँ अमानत जमा करा दिया । इसके बाद धीरे-धीरे सत्यदेवका व्यापार बढ़ा और वह लाखोंका आसामी बन गया । शहरके पैसेवालोंमें उसकी गिनती होने लगी । पर सदा सबके एक-से दिन नहीं रहते । समय पलटा और सत्यदेव बड़े नुकसानमें आ गया । सारा कारबार नष्ट हो गया और दीवाला निकल गया । यहाँतक कि भोजनके लिये चिन्ता रहने लगी ।

एक दिन सत्यदेव सोचने लगा—'क्या करूँ— । इतनेमें उसे याद आया कि धर्मचन्द सेठके यहाँ उसने दो सौ रुपये अमानत जमा करवाये थे । उसने बही उठायी और धर्मचन्द सेठका खाता निकालकर देखा, तब पता लगा कि दो सौ रुपयोंके नामके बदलेमें उनके दो हजार रुपये अपने खातेमें जमा हैं । उसे याद आ गया कि दो हजार रुपये उनसे खाते पेटे व्याजपर उधार लिये थे और फिर एक पैसा भी उनको वापस दिया नहीं गया । बही नीचे रखकर सत्यदेव बड़े विचार और चिन्तामें पड़ गया ।

ईश्वरके इच्छानुसार उसी समय धर्मचन्द सेठका मुनीम दो सौ रुपये लेकर आया और रुपये सत्यदेवकी गोदमें रखकर बोला—हमारे सेठने ये आपके अमानत रखे हुए दो सौ रुपये भेजे हैं और साथ ही यह कहलवाया है कि 'कभी काम पड़े तो याद कीजियेगा । हमारे जो दो हजार रुपये आपमें बाकी निकलते हैं, उनके लिये चिन्ता न करें । वे रुपये तो व्यापारके लिये हमने व्याजपर दिये थे । उन रुपयोंका आपके व्यापार-खातेसे सरकारकी ओरसे जो कुछ हिस्सा सबको मिलेगा, हमको भी मिल जायगा । व्याजू रुपयोंसे अमानतके रुपयोंका कोई सम्बन्ध नहीं होता ।

धर्मचन्दकी जगह दूसरा व्यापारी होता तो वह अपने खातेमें जमाखर्च करके बचे हुए १८००) पर व्याज लगाकर जितनी रकम होती, उसको शीघ्र चुका देनेके लिये अपने मुनीमको इस बुरी स्थितिमें भी—सत्यदेवके पास भेजता !

—लल्लूभाई बकोरभाई पटेल

(८)

कानूनी कर्तव्यसे ईश्वरीय कर्तव्यकी श्रेष्ठता

मेरे एक मित्रने एक तारबाबूकी ईश्वरीय कर्तव्य निष्ठाका वर्णन सुनाया—'जैतपुरसे मेरा पडधरीको तबादला हो गया । पहले मैं अकेला ही वहाँ गया ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एक दिन संध्याको मैं घूमकर आया तो घरपर एक अनजान आदमीको मैंने खड़े देखा। उसने मेरा नाम पूछकर तुरंत कहा—'आपका पुत्र सख्त बीमार है और आपकी पत्नीने आपको अभी बुलाया है।' 'आप कौन हैं? आपको कहाँसे खबर मिली? किसने आपको समाचार भेजा?' आदि मेरे एक ही साथके बहुत-से प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही उसने कहा—'ट्रेनका समय हो गया है, अतः जल्दी चलिये। अपने ट्रेनमें बात करेंगे।' मैं तुरंत चल दिया।

रास्तेमें उसने बतलाया—'मैं तार-आफिसमें काम करता हूँ। आपकी पत्नीका दिया हुआ तार मैंने पढ़ा। जल्दीमें वे 'लेट फीस' भरना भूल गयी होंगी। अतएव कानूनसे वह तार आपको कल सवेरे मिलता। पर तार देरसे मिलनेका परिणाम मैं पहले भोग चुका हूँ। तार देरसे मिलनेके कारण ही मैं अपनी स्वर्गीया पत्नीसे अन्तकालमें न मिल सका था। उस दिनसे मैं इस प्रकारकी स्थितिमें अवैधरूपसे लोगोंकी सहायता करना चाहता हूँ। यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे आपको यह समाचार पहुँचाना मेरे लिये अपराध है। तो भी मैं तुरंत नौकरीके समयमें भी छुट्टी लेकर बसपर सवार हो यहाँ दौड़ा आया हूँ। ईश्वरने चाहा और सब भले चंगे मिले तो मैं अपने इस प्रयत्नको सफल समझूँगा।'

कानूनी कर्तव्यसे मानवताकी भावना कितनी ऊँची है, इसका प्रत्यक्ष प्रतीति उन्होंने मुझे करवा दी। 'मैं आपका बड़ा ऋणी हो गया।' मैं इस प्रकार कहने जा रहा था कि बीचमें ही उन्होंने मुझे रोककर कहा—'अपने विभागके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पालन करते-करतेमें ही ईश्वरके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पालन करनेका सौभाग्य मुझे आपकी मार्फत मिला, इसलिये मैं आपका ऋणी हूँ।'

मैंने मन-ही-मन उनको नमस्कार किया। मेरे लिये उनको आर्थिक नुकसान न हो, यह सोचकर मैंने उनको बस तथा ट्रेनका किराया देना चाहा, परंतु उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा—'कर्तव्य-पालनके संतोषको पैसोंसे मत ढकिये।' कैसी मानवता! कर्तव्यका कितना सुन्दर अर्थ!

रात्रिको मैं ठीक समयपर पहुँच गया। मैंने देखा मेरा अनिल मानो अन्तिम श्वास खींच रहा है····परंतु ईश्वर कितना दयालु है। मेरे मिलनेके आनन्दसे अथवा ईश्वरीय संकेतसे उसके स्वास्थ्यमें तुरंत सुधार दिखायी दिया और थोड़े ही दिनोंमें वह अच्छा हो गया। डाक्टरने भी इसे चमत्कार माना और कहा कि 'आप ठीक समयपर न पहुँचे होते तो ऐसी आशा नहीं थी।'

आयुकी डोरी तो ईश्वरके हाथ है; यह सत्य है। परंतु एक मनुष्यकी मानवताने ही मेरे पुत्रको बचाया, मुझे तो ऐसा लगता है।

—एच्० एच्० त्रिवेदी

(९)

नवरात्र-व्रतकी महिमा

सन् १९२७ ई० की बात है। अपनी मूर्खताके कारण ही सेंट जोन्स कालेज आगरेकी दो सौ माहवारकी प्रोफेसरी छूट गयी थी। मुझे और मेरे परिवारको बड़ी परेशानी हुई। बुलंदशहरमें वकालत शुरू की; पर मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं Teacher (शिक्षक) से Cheater (धोखेबाज) बन गया। फिरसे कालेजमें कहीं नौकरी मिले, चाहे वह १००) माहवारकी ही हो—इस परेशानीमें और कुछ प्रायश्चित्तके रूपमें मैंने नवरात्र-व्रत रखनेका संकल्प किया। पूज्य माताजीने भी व्रत मेरे कल्याणके लिये रक्खा। व्रतके नियम-विधि-विधान इत्यादि मुझे कुछ नहीं आता था। दिनभर एकान्तमें बैठकर गायत्री-मन्त्र जपता रहता था। शामको फलाहार कर लेता था। सातवें दिन चित्तकी अपने-आप ही कुछ ऐसी एकाग्रता हो

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गयी कि जब मैं पासके कुएँकी प्याऊमें बैठा हुआ जप कर रहा था, उसी समय किसीने भाई डाक्टरकी दुकानपर खबर दी कि हमारे घरमें आग लग गयी है। सभी पानी लेकर दौड़े। उसी प्याऊमेंसे मेरे पास ही रक्खे हुए सब पानीसे भरे घड़े और डोल इत्यादि लेकर शीघ्रतासे घर गये। अग्नि शान्त हो गयी। पर सच बात है कि मेरे कानोंमें न आग लगनेकी और न कुएँपरसे पानी ले जाने और न सबके घरको दौड़नेकी आवाजें पड़ीं और मैं अपने जपमें एकाग्रतासे लगा रहा। जप समाप्त होनेपर मुझे सबने दिखावटी, बनावटी, ढोंगी और मूर्ख कहा कि मैं आग बुझानेको न दौड़ा। मैंने सबको विश्वास दिलाया कि मुझे जरा भी आग लगनेका भास होता तो मैं अवश्य ही मालाको फेंककर और जप छोड़कर आग बुझानेमें लग जाता—पर किसीको विश्वास क्यों होने लगा? सच बात तो यह है कि इन तीस वर्षोंमें भी मुझे ऐसी एकाग्रताका बहुत प्रयत्न करनेपर भी फिर अनुभव आजतक नहीं हो पाया। भविष्यकी प्रभु ही जानें। नौ दिनके व्रत बड़े आनन्दपूर्वक समाप्त हुए। आर्यसमाजी परिवारमें पले होनेके कारण मुझे विधिपूर्वक यह व्रत करनेका कुछ भी ज्ञान नहीं था और न कभी इसको जाननेका ही प्रयत्न किया था।

दसवें दिन, मुझे रात्रिमें स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णजीके दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे कहा कि 'बच्चे! गीता पढ़ो' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

दूसरे दिन, आर्यसमाजी होनेके कारण इस स्वप्नपर मैंने अधिक ध्यान न दिया। मैं कृष्ण भगवान्‌की महिमाको जानता ही नहीं था। मैं उनको अवतार भी नहीं मानता था। हाँ; उन्हें एक महान् योगिराज मानता था। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि स्वप्नमें गीताके पढ़नेका आदेश देकर ही उनकी मुझपर कृपाका अन्त नहीं हुआ। तीसरे ही दिन, एक हमारे निकटके रिश्तेदार दिल्लीसे बहुत-सी पुस्तकें खरीदकर लाये थे और नैनीताल जानेसे पहले वे एक रातको हमारे यहाँ ठहरे। जाते समय वे अपनी सब पुस्तकें साथ ले गये, पर भूलसे ज्ञानेश्वरी गीता मेरी मेजपर ही छोड़ गये। जब एक दिन बाद मैंने ज्ञानेश्वरीको देखा और कुछ पढ़ा, तब मुझे स्वप्नकी फिर याद आयी कि भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने केवल मुझे गीता पढ़नेका ही आदेश नहीं किया बल्कि अपनी महान् कृपासे गीता भी मेरे पास भेज दी। उसे पढ़ते-पढ़ते ही मैं मूर्तिखण्डकसे मूर्तिपूजक न जाने कैसे बन गया और तबसे शायद कोई गीताकी पुस्तक ही ऐसी रही हो जो मैंने न पढ़ी हो। सिवा उसके पढ़नेके मुझे किसी और विषयकी पुस्तक पढ़नेमें आनन्द ही नहीं आता—यह सच बात है। नवरात्र-व्रतके समाप्त होनेके दस दिन बाद मेरी 'श्रीराम कालेज ऑफ़ कॉमर्स' दिल्लीमें १५०) माहवारपर प्रोफेसरीके पदपर नियुक्ति हो गयी। चार वर्ष हुए, वहाँसे ६४०) माहवारी पाते हुए मैं रिटायर हुआ था और उसके पश्चात् यहाँ जम्मूमें एक डिग्री कालेजका प्रिंसिपल हूँ।

लिखनेका अभिप्राय यही है कि नवरात्र-व्रतसे मेरे सब संकट दूर हो गये। तबसे अबतक मैं और मेरी माताजी दोनों नवरात्र-व्रत करते रहे हैं। मैंने बहुत-से दुखी मनुष्योंको नवरात्र-व्रतका नुसखा बताया है और खुशी इस बातकी है कि इस व्रतके करनेसे सबके ही संकट दूर हो गये और वे सब नियमपूर्वक प्रत्येक नवरात्र-व्रत रखते हैं। 'कल्याण' के पाठक इसके पढ़नेसे व्रतकी महिमा स्वयं समझकर गीता और नवरात्र-व्रतको अपनायेंगे, इसी उद्देश्यसे उनकी सेवामें कुछ अपने बारेमें लिखनेका साहस किया है।

—एम्० एल्० शाण्डिल्य

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi